श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला पुष्प नं ९१

श्रीमद्रत्नप्रभसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः

श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराजकृत

# नयचक्रसार

( हिन्दी अनुवाद सहित )

अनुवादक,

शाह लाधूरामजी तत् पुत्र मेघराजजी मुणोत
मु॰ फलोदी

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला
मु॰ फलोदी ( मारवाड )

भावनगर-आनंद प्रिन्टींग प्रेस में
शाह गुलाबचंद लल्लुभाइने मुद्रित किया

प्रथमावृत्ति १०००    वीर संवत् २४५५

विक्रम सं॰ १९८६    ओसवाल संवत् २३८६

किंमत ०-६-० आना

# सूचीपत्र

# ॥ निवेदन ।

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज के बनाये हुवे सभी ग्रन्थ प्राय द्रव्यानुयोग विषयिक हैं तथापि इस नयचक्रसार में जैसा षद्द्रव्य और स्याद्वाद के स्वरूप को प्रतिपादन किया है वैसा अन्य ग्रन्थों में नहीं है इस छोटे से ग्रन्थ में न्यायप्रियता के साथ अन्य दर्शनियों का निराकरण करते हुवे जैन सिद्धान्तों के तत्वों का ऐसा प्रतिपादन किया है कि यह तर्कविषयि सर्व साधारण के लिये अपूर्व ग्रन्थ है। पूर्व महर्षियों के बनाये हुवे—सम्मतितर्क, नयचक्रवाल, स्याद्वादरत्नाकर, तत्वार्थप्रमाण वार्त्तिक, प्रमाणमिमासा, न्यायावतार, अनेकान्त-जयपताका, अनेकान्तप्रवेश, प्रमेयरत्नकोष और धर्मसंग्रहणी आदि तर्कशास्त्र विषयिक अनेक बडे २ ग्रन्थ है उन्ही ग्रन्थों को मथन कर के बाल जीवों के हितार्थ उक्त महात्माने इस ग्रन्थ को जिस खूबी के साथ प्रतिपादन किया है वह अपने ढगपर एक अनोखा ही ग्रन्थ है इस का गुजराती भाषान्तर भी ग्रन्थ कर्ताका ही किया हुआ है

ऐसे तार्कीक द्रव्यानुयोग विषयिक ग्रन्थ का एक भाषा से दूसरी भाषा में परिवर्तन करना सामान्यावबोधवाले का काम नहीं है जो द्रव्यानुयोग का पूर्ण ज्ञाता हो, तर्कशास्त्र पढा हो वही इस की अच्छी तरह व्याख्या करके समझा सकता है इस ग्रन्थ को यथार्थतया हिन्दी अनुवाद करने के लिये में असमर्थ हू तथापि केवल अपनी बोधवृद्धि के लिये मन की अति उत्कठा से प्रेरित होकर यह अनुवाद किया है सभव है कि अल्पज्ञता के कारण कई जगह गलतीया रहगई हो इसके लिये तत्वरसिक पाठकोंसे नम्र निवेदन है कि वे क्षमाप्रदान करके सुधार कर पढने की कृपा करेंगे सुज्ञेषु किंबहुना।

भवदीय—मेघराज मुणोत—फलोधी

वाली श्री सघ का अति आग्रह से पसला दनग्राल

## मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज।

जन्म स १९३७ विजयादशमी

आनन्द प्रि प्रेस – भावनगर

# पुष्पाञ्जली.

पूज्यपाद मुनि श्री १००८ श्रीज्ञानसुन्दरजी महाराज साहिब के

## करकमलों में

आपश्री जैसे जैन सिद्धान्तो के तत्वज्ञ और द्रव्यानुयोग के ज्ञाता है वैसे ही आपश्री के व्याख्यान मे भी अपूर्वता है कि चारों अनुयोगवाले श्रोतागण अपने २ रस को पाकर सतोषित होते हैं आप के तीन चातुर्मास ( स १६७७–७८–७६ ) फलोधी होने से जनता को सिद्धान्तों के श्रवण और तत्वबोध की प्राप्ति का जो अपूर्व लाभ मिला जिस में खास कर मुझ पर आपश्री का जो तत्वज्ञ प्रेमभाव रहा उस के लिये में सदा कृतज्ञ हू आपने मेरे हृदय में जिस उत्साह के साथ तत्त्वज्ञता के श्रोत का उद्गम किया है जिस के प्रवाह मे आज पर्यन्त बोधलता का सींचन हुवा करता है और उसी का यह एक पुष्प आपश्री के करकमलों में स्मरणार्थ अर्पण करता हू जिसे आप सहर्ष स्वीकार करेंगें

हाल मुकाम
दुकान खैरागढ सी पी
ता १–४–२६

आपका चरणोपासक
मेघराज मुणोत
फलोधी–(मारवाड़ )

# शुद्धिपत्र

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पुष्प न ६४ | पुष्प न ६५ | १ | १ | पाचका | पाचवां | ४० | १७ |
| को | कै | ७ | १ | पचास्तिकये | पचास्तिकाये | ४३ | १८ |
| सो | मौ | ६ | २० | गर | मगर | ५० | ११ |
| सो | सो | ६ | २१ | विधिनिवेध | विधिनिषेध | ६३ | २१ |
| जल्प | छन्न | १० | १७ | का | की | ६३ | १ |
| कहत | कहते | १२ | ११ | रूपोनित्य | रूपोऽनित्य | ६५ | ६ |
| प्रवरा | प्रदेश | १२ | १६ | व्ययरूपनित्य | व्ययरूप अनित्य | ६५ | १३ |
| प्रवेश | प्रदेश | १२ | १७ | परिमनात | परिणामनात | ६८ | ५ |
| चत्र | चैत्रों | १३ | ६ | करणस्यापि | कारणस्यापि | ६८ | ६ |
| स्थिन्युपदम्भ | स्थित्युपष्टम्भ | १४ | १४ | घटा | घट | ७१ | ६ |
| धमास्ति | अधर्मास्ति | १४ | १५ | अभदभाव | अभेदाभावे | ७८ | ६ |
| अस्तिकायान्व | अस्तिकायत्व | १६ | ३ | उत्थितार्गात् | उत्थितासीनो | ८० | ५ |
| अनेक | नेक | १६ | ७ | पुरुषवत् | पुरुषवत्त | ८ | ६ |
| स्वरुप | स्वरूप | २० | १८ | दवन्च | देवच | ८० | ६ |
| पठ | ऐंठ | | १६ | रूदासीवता | मदासीना | ८० | १० |
| स | से | १ | ५ | निरो | तिरा | ८० | ११ |
| घर | घट | ३० | ५ | परिणत | परिणामत | ८० | १३ |
| परपर | परापर | ३६ | २ | वक्तव्यभावे | वक्तव्याभावे | ८३ | १८ |
| नास्ति | नास्तिता | २६ | ११ | अव्यक्तव्यभाव | अव्यक्तव्याभाव | ८३ | १९ |
| अस्ति | नास्त | ३६ | १३ | भव | भाव | ८३ | २० |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| नन्नधम | नन्तधर्म | ८६ | १५ |
| कारण | करण | ८९ | १३ |
| क्रिया | क्रिय | ९१ | ६ |
| क्रिया | क्रिय | ९१ | ७ |
| अचेतना | अचेतन | ९१ | ९ |
| गध | गन्धरम | ९३ | ७ |
| द्रव्यव्यजन | द्रव्य | ९४ | १ |
| निरवसेस | निरवसेरा | ९५ | २१ |
| च उक्क | चउक्क | ९५ | २१ |
| द्विविध | द्विविध सहज साकेतिकश्च स्थापनाऽपि द्विविध | ९६ | १ |
| क्रियाया – | क्रियाया सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्र रहितया ऐहिकामुष्मिकार्थं प्रवृत्तया | ९६ | २१ |
| नैं | ऊँ | ९७ | १ |
| स्ते | यास्त्वे | ९८ | २ |
| मान्य | मामान्य तिर्यक् सामान्य च तत्रोर्ध्व सामान्यं ध्यमेव तियक् सामान्य | १०० | ७ |

| अशुद्ध | शुद्ध | पृष्ठ | पंक्ति |
|---|---|---|---|
| मन्नह | समह | १०३ | |
| ष्मभए | पतए | १०६ | ७ |
| कारणान | कारणता | ११० | १ |
| सहना | कहना | ११० | ११ |
| वजयेोणभय | वजयेोणभयं | ११५ | ५ |
| नेक्म | नैकगम | ११७ | ७ |
| जीव | जीवगम | ११९ | ९ |
| निराचरण | निराचक्षाण | ११९ | २१ |
| प्रवर्त | प्रवत | १२३ | ५ |
| भिद | भिन्न | १२५ | १३ |
| शब्दत्वे | शब्दत्व | १२९ | १५ |
| कामादि | रमादि | १३१ | ४ |
| मवक्त | सवक्त | १३५ | ५ |
| ह | हूं | १३६ | ६ |
| आत्मा का मिलता | आत्मप्राप्ति | १३७ | १५ |
| मुनि | श्रुत | १४३ | १४ |

# प्रशस्ति.

श्री जिन आगम के विषय (१) द्रव्यानुयोग (२) चरण करणानुयोग (३) गणितानुयोग (४) धर्मकथानुयोग ये चार अनुयोग कहे हैं जिस में छे द्रव्य और नव तत्त्व उनके गुण पर्याय स्वभाव परिणमन का जानना यह द्रव्यानुयोग है इस तरह पचास्तिकाय का स्वरुप कथनरुप है उस पचास्तिकाय में एक आत्मानामक अस्तिकाय द्रव्य है व आत्मा अनन्त हैं जिस के मुख्य दो भेद हैं ( १ ) सिद्ध निप्पन्न सब कमावरण दोष रहित सपूर्ण केवलज्ञान केवलदर्शनादि गुण प्रगटरुप अखन्ड अचल अव्याबाधानदमयी लोक के अन्तमें विराजमान स्वरुप भोगी हैं उनको सिद्ध जीव कहते हैं यह सिद्धता आत्मा का मूल धर्म है उस सिद्धता की इच्छा करके उनकी यथार्थ सिद्धता को पहिचाने और जो सिद्धावस्था निप्पन्न हैं उन सिद्धों का बहुमान करना और अपनी भूलसे अशुद्ध चेतनापन परिणत हो कर ज्ञानावरणादि कर्म बांधे हैं उनको टाल कर सम्पूर्ण सिद्धता की रुची करनी यह हित शिक्षा है

दूसरा भेद ससारी जीवों का है जिनने आत्म प्रदेशों से स्वकर्तापने कर्म पुद्गलों को ग्रहण किया है तथा कर्म पुद्गलों का लोली भाव हैं वे मिथ्यात्वगुणस्थानक से यावत् अयोगी केवली गुणस्थानक के चरम समय पर्यंत सब ससारी जीव कहलाते हैं उनके भी दो भेद हैं एक अयोगी दूसरा सयोगी सयोगी के दो भेद एक सयोगी केवली दूसरा छद्मस्थ छद्मस्थ के दो भेद एक अमोही दूसरा समोही समोही के दो भेद एक अनुदित मोही दूसरा उदितमोही उदितमोही के दो भेद एक सूक्ष्ममोही दूसरा बादरमोही बादरमोही के दो भेद एक श्रेणी निप्पन्न दूसरा श्रेणी रहित श्रेणि रहित के दो भेद एक संयमी विरति दूसरा अविरति अविरति के दो भेद एक सम्यक्त्वि दूसरा मिथ्यात्वी मिथ्यात्वी के दो भेद एक ग्रंथि भेदी दूसरा ग्रंथि अभेदी ग्रंथि

अभेदी के दो भेद एक भव्य दूसरा अभव्य, अभव्य जीवोंका दल ऐसा है कि वे श्रुताभ्यास करते हैं द्रव्य से पांच महाव्रतों को भी अंगीकार करते है परन्तु आत्मधर्म की यथार्थ श्रद्धा विना प्रथम गुणस्थानकमें ही रहते हैं वे अभव्य जीव सिद्ध पदको प्राप्त नहीं कर सके उनकी संख्या चौथे अनन्त तुल्य है

दूसरे भव्य हैं वे सिद्धपने के योग्य है उन को कारण योग्य मिलने से पलटन धर्म का प्राप्त होते है ऐसे भव्य जीव अभव्य से अनंतगुण हैं उनमें से कई भव्य जीव सामग्री पा कें ग्रंथिभेद कर सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं और कितनेक भव्य ऐसे हैं जो सामग्री के अभावसे कभी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं कर सके उक्तंच–विशेषावश्यके " सामग्गी अभावाओ व्यवहार रासि अप्पवेसाओ । भव्वावि ते अणंता न सिद्धसुहं न पावंति ॥ १ ॥ उन भव्य जीवों में योग्यता धर्म का सद्भाव है इस लिये भव्य कहलाते हैं

मिथ्यात्व को छोड़ के शुद्ध पर्याय रूपसे व्यापक है वही जीव का स्वधर्म है और जिससे आत्मसत्तागत धर्म प्रगट हो उसको साधन धर्म कहते हैं जिस के दो भेद (१) वायणा–पुच्छणादि–वंदन नमनादि पडिलेहन–प्रमाजनादि सब योग प्रवृत्ति है वह द्रव्य से साधन धर्म है भावधर्म प्रगट करने के लिये यह कारणरूप है द्रव्य साधन उसी को कहते है जो भाव का कारण हो– कारण कारया से दव्व " इति आगम वचनात् और क्षयोपशमादि भावसे प्रगट हुवे जो ज्ञानवीर्यादि गुण उसको पुद्गलानुयायीपने से हटा के शुद्ध गुणी जो अरिहंत सिद्धादिक उन के शुद्ध गुणोंमें अनुयायी करना अथवा आत्मस्वरूप अनन्तगुणपर्यायरूप उस के अनुयायी करना यह भावसे साधन धर्म है यही आत्मसिद्धि उत्पन्न करने का उपाय है

जब तक आत्मा का शुद्ध स्वरूप चिदानंदघन साध्य नहीं है और पुद्गल सुखकी आशा से विषयरस अन्योअन्य अनुष्ठान करना यह संसार का हेतु है.. इस लिये साध्य सापेक्षपने स्याद्वाद श्रद्धा सहित साधन करना यह

समये प्रस्त है इस लिये श्रुतज्ञान सत्य नहीं होता वास्ते नयज्ञान की जरूरत है यद्यपि केवली का उपयोग एक समय का है इसलिये उनको जानने के वास्ते नयकी जरूरत नहीं पड़ती परन्तु वचन से कहने के लिये केवली को नय सहित बोलना पड़ता है क्योंकि वचन अनुक्रम से बोला जाता है और वस्तु धर्म एक समय अनंत हैं वास्ते नय सहित बोलते हैं पूज्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण भी कहते हैं

जीवादि द्रव्य में जो गुण हैं वह अनन्त स्वभावी हैं गुणकी आसक्तता उसका परिणमन प्रवृत्ति और उसमें जिस समय कारणता उसी समय कार्यता इत्यादि अनेक परिणति सहित हैं उन सब का भिन्न रीतिसे भिन्न पने ज्ञान हो तो वह नयसे होता है वास्ते सम्यक्त्व धारी जीव को नय सहित ज्ञान करना चाहिये अनेक धर्म सब द्रव्य में रहे हैं वास्ते पहिले गुरु कृपासे द्रव्यगुण पर्याय की पहिचान करवाते हैं ( यह पीठिका कही आगे मूल सूत्र के अर्थकी व्याख्या करते हैं )

लेखक

ग्रन्थकर्ता.

# श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला ।

## मु फलोदी ( मारवाड ) से प्रकाशित पुस्तकें की माला (१०८)

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ प्रतिमा छत्तीसी | )॥ | +३१ सुखविपाक मूलसूत्र | ।) |
| २ गयवर विलास | ।) | ३२ शीघ्रबोध भाग ६ ठा | ।) |
| ३ दानछत्तीसी | )॥ | +३३ दशवैकालिक मूल सूत्र | =) |
| ४ अनुकम्पाछत्तीसी | )॥ | ३४ शीघ्रबोध भाग ७ वा | ।) |
| ५ प्रश्नमाला | -) | ३५ मेझरनामा | ॥) |
| ६ स्तवनसंग्रह भाग १ ला | =) | ३६ तीन निनामक लेखो का उत्तर | भेट |
| ७ पैंतीस बोलसंग्रह | | ३७ ओशियों ज्ञानभण्डार का लीस्ट | भेट |
| ८ दादासाहिबकी पूजा | =) | ३८ शीघ्रबोध भाग ८ वा | ।) |
| +९ चर्चा का पब्लिक नोटीश | | ३९ शीघ्रबोध भाग ९ वा | ।) |
| १० देवगुरु वंदनमाला | -) | ४० नन्दीसूत्र मूलपाठ | ।) |
| ११ स्तवनसंग्रह भाग दूजा | =) | *४१ तीर्थयात्रास्तवन | )॥ |
| १२ लिंगनिर्णय बहुतरी | -) | ४२ शीघ्रबोध भाग १० वा | ।) |
| १३ स्तवनसंग्रह भाग ३ जा | =) | ४३ अमे साधु शा माटे थया | भेट |
| १४ सिद्धप्रतिमा मुक्तावली | ॥) | *४४ विनती शतक | |
| १५ बत्तीससूत्र दर्पण | =) | ४५ द्रव्यानुयोग प्रथम प्रवेशिका | =) |
| १६ जैन नियमावली | )॥ | ४६ शीघ्रबोध भाग ११ वा | ।) |
| *१७ चौरासी आशातना | )॥ | ४७ शीघ्रबोध भाग १२ वा | ।) |
| +१८ डंका पर चोट | भेट | ४८ शीघ्रबोध भाग १३ वा | ।) |
| +१९ आगम निर्णय प्रथमांक | =) | ४९ शीघ्रबोध भाग १४ वा | ।) |
| *२० चैत्यवन्दनादि | )॥ | ×५० आनन्दघन चौवीसी | भेट |
| *२१ जिनस्तुति | )॥ | ५१ शीघ्रबोध भाग १५ वां | ।) |
| *२२ सुबोधनियमावली | )॥ | ५२ शीघ्रबोध भाग १६ वा | ।) |
| *२३ जैनदीक्षा | )॥ | ५३ शीघ्रबोध भाग १७ वा | ।) |
| *२४ प्रभुपूजा | )॥ | *५४ वक्तावत्तीसी सार्थ | ।) |
| +२५ व्याख्याविलास भाग १ ला | = | *५५ व्याख्याविलास भाग २ जा | =) |
| २६ शीघ्रबोध भाग १ ला | १।) | *५६ व्याख्याविलास भाग ३ जा | =) |
| २७ शीघ्रबोध भाग २ जा | | *५७ व्याख्याविलास भाग ४ था | =) |
| २८ शीघ्रबोध भाग ३ जा | | *५८ स्वधर्म्य संग्रह भाग १ ला | =) |
| २९ शीघ्रबोध भाग ४ था | | *५९ राईदेवसि प्रतिक्रमण | =) |
| ३० शीघ्रबोध भाग ५ वा | | *६० उपकेशगच्छ लघुपट्टावलि | -) |

+ इस निशानीवाली पुस्तकें खलास हो चुकी है

* इस निशानीवाली २५ पुस्तकों कपडा का एक जिल्द में बन्धवा के तय्यार कराई है जिसका नाम '**ज्ञानविलास**' है कि० रु० १॥)

## श्री ज्ञानप्रकाश मण्डल रूणसे प्रकाशित पुस्तकें

१ भावना संग्रह भाग १ ला ≈। | ४ नित्यस्मरण पाठमाला ।)
२ भावना संग्रह भाग २ जा -) | ५ गुणानुकुलक ( लोहावटस ) ≈)
३ नौपदानुपूर्वि -) | ६ द्रव्यानुयोग द्वि० प्रवेशक (,,) ≈)

पुस्तकें मिलने का पत्ता— श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला
मु फलोदी ( मारवाड )

## मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज के सदुपदेश से स्थापित संस्थाओं की नामावलि

| संख्या | संस्थाओं का नाम | ग्राम | संवत |
|---|---|---|---|
| १ | जैन बोर्डिंग | ओशीयाँतीर्थ | १६७२ |
| २ | जैन पाठशाला | फलोदी | १६७२ |
| ३ | श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला | , | १६७२ |
| ४ | श्री जैन लायब्रेरी | ,, | १६७३ |
| ५ | श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला | ओशीयाँतीर्थ | १६७३ |
| ६ | श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानभण्डार | ,, | १६७६ |
| ७ | श्री वर्धमान लायब्रेरी | ,, | १६७६ |
| ८ | श्री जैन नवयुवक प्रेम मण्डल | फलोदी | १६७७ |
| ९ | श्री रत्नप्रभाकर प्रेम पुस्तकालय | ,, | १६७९ |
| १० | श्री जैन नवयुवक मित्रमण्डल | लोहावट | १६८० |
| ११ | श्री सुखसागर ज्ञानप्रचार सभा | ,, | १६८० |
| १२ | श्री वीर मण्डल | नागोर | १६८१ |
| १३ | श्री मारवाड तीर्थ प्रबन्धकारणी कमेटी | फलोदीतीर्थ | १६८१ |
| १४ | श्री ज्ञानप्रकाश मण्डल | रूण | १६८१ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १५ | श्री ज्ञानवृद्धि जैन विद्यालय | कुचेरा | १९८१ |
| १६ | श्री महावीर मित्र मण्डल | , | १९८१ |
| १७ | श्री ज्ञानोदय जैन पाठशाला | खजवाणा | १९८१ |
| १८ | श्री जैन मित्रमण्डल | | १९८१ |
| १९ | श्री रत्नोदय ज्ञान पुस्तकालय | पीसांगण | १९८२ |
| २ | श्री नैन पाठशाला | बीलाड़ | १९८२ |
| २१ | श्री ज्ञानप्रकाश मित्र मण्डल | | १९८२ |
| २२ | श्री जैन मित्रमण्डल | पीपाड़ | १९८३ |
| २३ | श्री ज्ञानोदय जन लायब्ररी | | १९८३ |
| २४ | श्री नैन श्वेताम्बर सभा | | १९८३ |
| २५ | श्री नैन लायब्रेरी | बीसलपुर | १९८३ |
| २६ | श्री जन श्वेताम्बर मित्रमण्डल | खारिया | १९८४ |
| २७ | श्री जन श्वेताम्बर ज्ञान लायब्ररी | मायरा (मेवाड) | १९८४ |
| २८ | श्री जन कन्याशाला | सादड़ी | १९८४ |
| २९ | श्री जन कन्याशाला | लुणावा | १९८५ |

कितनेक लोग यह कह बैठते है कि हम एकेले क्या कर सके ? पर देखिये इन एकेले महात्माने मारवाड जैसी भूमि में विहार कर अनेक वादियों की टक्कर खाते हुए भी कितना काम किया है अगर ऐसे पांच दश साधु कम्मर कस मारवाड मेवाड मालवा ढूँढाड़ वगैरह प्रदेशो में विहार कर जैन समाज को जागृत करनी चाहे तो शासन का कितना काम कर सके ? उन के लिये यह एक उदाहरण है। प्रार्थना यह है कि आप श्रीमान चिरकाल तक विहार कर शासन की सेवा कर हमारे जैसे भावों पर उपकार करते रहे।

पूर्वोक्त पुस्तके मिलने का पता —

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु० फलोदी ( मारवाड )

श्री रत्नप्रभसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नम.

श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत

# नयचक्रसार

## हिन्दी अनुवाद सहित.

तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ ! ।
तुभ्य नमः क्षितितलामलभूषणाय ॥
तुभ्य नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय ।
तुभ्य नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥

॥ मगलाचरण ॥

प्रणम्य परमब्रह्म, शुद्धानन्दरसास्पदम् ।
वीर सिद्धार्थ राजेन्द्र–नदन लोकनन्दनम् ॥ १ ॥
नत्वा सुधर्मस्वाम्यादि, सघ सद्वाचकान्वयम् ।
स्वगुरून् दीपचन्द्राख्य,–पाठकान् श्रुतपाठकान् ॥ २ ॥
नयचक्रस्य शब्दार्थ कथन लोकभाषया ।
क्रियते बालबोधार्थं, सम्यग्मार्ग विशुद्धये ॥ ३ ॥

अर्थ—लोगों को आनन्द देनेवाले सिद्धार्थ राजा के पुत्र

शुद्धआनन्द रस को स्थान और परमब्रह्म ऐसे वीरभगवान को प्रणाम करके, सुधर्मस्वाम्यादि सघ श्रेष्ठ वाचकों के समुदाय को तथा अपने गुरु दीपचन्द्रादि श्रुतपाठकों को नमस्कार करके अल्पज्ञजनों के बोधार्थ और सम्यग् मार्ग की विशुद्धि के लिये नयचक्र के शब्दार्थ को में लोक भाषा में कथन करता हू

श्री वर्द्धमानमानम्य, स्वपरानुग्रहाय च ।
क्रियते तत्वबोधार्थं, पदार्थानुगमो मया ॥ १ ॥

अर्थ—श्री महावीरस्वामी को प्रणाम करके अपने और पर जो शिष्यादि उनके उपकारार्थ वस्तुधर्म को जानने के लिये धर्मास्तिकायादि के स्वरूप को में कहता हू

विवेचन—ससार में अन्यदर्शनीय लोग द्रव्य को अनेक प्रकार से कहते हैं जैसे—नैयायिक सोलह पदार्थ, वैशेषिक सात-पदार्थ, वैदान्तिक, साख्य एक पदार्थ और मीमासिक पाच पदार्थ कहते हैं वे सब मिथ्या है उन लोगोंने पदार्थ के स्वरूप को नहीं पहिचाना श्री अरिहत, सर्वज्ञ प्रत्यक्ष ज्ञानीयोंने छे पदार्थ कहे हैं "एक जीव और पाच अजीव" ( इनका स्वरूप आगे चलके बतावेंगे ) तथा नौ तत्त्व रूप जो नौ पदार्थ कहे हैं उसमें एक जीव दूसरा अजीव यह दो पदार्थ मुख्य है शेष सात तत्त्व केवल जीव अजीव के साधक, बाधक, शुद्ध, अशुद्ध परिणति की अवस्था भेद को पहचानने के लिये किये हैं

द्रव्याणाच गुणानां च पर्यायाणा च लक्षण ।
निक्षेप नय सयुक्त तत्व भेदैरलकृतम् ॥

तत्र तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्या तस्य जीवादेर्वस्तुनो भावः स्वरूप तत्वम्

अर्थ—द्रव्य, गुण और पर्यायों के लक्षण को निक्षेप नयचक्र के युक्त तत्व भेद सहित कहता हूं तत्रजिनागम के विषय तत्ववस्तुस्वरूप की भेद पर्याय से व्याख्या है जीवादि वस्तु के मूल धर्म को स्वरूप तत्त्व कहते हैं।

विवेचन—तत्त्व का लक्षण कहते हैं व्याख्यान करने योग्य जो जीवादि पदार्थ उसके मूल धर्म को स्वरूप तत्त्व कहते हैं जैसे-सोने का स्वरूप पीला भारी स्निग्धादि है तथा कार्य आभरणादि है फलतया इससे अनेक भोग वस्तु प्राप्त होती है इसी तरह जीव का स्वरूप ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि अनन्त गुण और कार्य सब भावों का जानपना इत्यादि अभेदपने रहा हुवा धर्म वही सब वस्तु का स्वरूप तत्त्व है

येन सर्वत्राविरोधेन यथार्थतया व्याप्य व्यापक
भावेन लक्ष्यते वस्तु स्वरूप तल्लक्षण ॥

अर्थ—जिस चिन्हसे विरोधरहित वास्तविकवस्तुस्वरूप व्याप्य व्यापकरूप से जाना जाय उसे लक्षण कहते है

विवेचन—लक्षण का स्वरूप कहते है-जो गुण स्वजातीय सब द्रव्य में यथार्थ भाव से-अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असभवादि दोष रहित व्याप्य, व्यापकरूप से जाना जाय उसको लक्षण कहते हैं वह दो प्रकार से हैं (१) लिंगग्राह्य-आकाररूप (२) वस्तु में

रहा हुवा स्वरूप, उसमें लिंग बाह्य यथा-गाय का लक्षण "सा स्नादिसहितपना" यह बाह्याकाररूप लक्षण है, इस बाह्याकार मे बोधकरवाना बालबुद्धि वालों के लिये है और वस्तु को वस्तुधर्म से जानना यह स्वरूप लक्षण है यथा-जिसमें चेतनादि लक्षण हो वह जीव तथा चेतना रहित हो वह अजीव इत्यादि लक्षण से पहिचानना यह स्वरूप लक्षण है इसी तरह अनेक प्रकार से समझ लेना

तत्र द्रव्यभेदा यथा जीवा अनन्ताः कार्यभेदेन भावभेदा भवन्ति क्षेत्रकाल भाव भेदानामेक समुदायित्व द्रव्यत्वम्

अर्थ—द्रव्य से भेद यथा जीव अनन्त है, कार्य के भेद से भाव भेद होता है क्षेत्र, काल, भावभेदों का जो एक समुदाय उसको द्रव्य कहते हैं

विवेचन—अब भेदका स्वरूप कहते है —जो वस्तु कथन की जाय उसके चार भेद है ( १ ) द्रव्य ( २ ) क्षेत्र ( ३ ) काल ( ४ ) भाव

तत्र उस में द्रव्य का भेद जैसे-लक्षण से एक सरीसे हैं परन्तु पिंड रूपसे पृथक २ हो उसको द्रव्यभेद कहते है जैसे सर्व जीव जीवत्वरूप सामान्यता से सरीखे है परन्तु प्रत्येक जीव स्वगुण, पर्याय मे पिंडपने जुदे जुदे हैं, कोई किसी में मिल नहीं सक्ता इस लिये द्रव्य भिन्नता से जीव अनन्ते है पुद्गल परमाणु भी जडतापने सरीखे है परन्तु सब परमाणु द्रव्यरूप से जुदे रहे

हैं वे किसी समय न्यूनाधिक नहीं होते अर्थात् कोई भी काल में घटते नहीं इसी तरह नये बढते भी नहीं

क्षेत्रांश—क्षेत्र से भेद जो विस्तीर्ण हो तो पृथक् अर्थात् जुदा क्षेत्र अवगाह के रहे जैसे—जीवादि द्रव्य के प्रदेश अवगाहना धर्म से पृथक है परन्तु द्रव्य से पृथक नहीं होते सलग्न रहते हैं गुणपर्याय सब प्रदेशों में अनन्त है वे स्वप्रदेश को छोड के अन्य प्रदेश में नहीं जाते एक पर्याय अवि भाग की और प्रदेश की अवगाहना तुल्य है वे पर्याय भिन्नपने अनन्त है और वे अनन्त पर्याय समिलित होके एक कार्य करे उस कार्य को गुण कहते हैं

काल—एक वस्तु में उत्पाद व्यय रूप पर्याय के परिवर्तन काल को समय कहते है जितना उत्पाद व्यय तथा अगुरुलघु हानि वृद्धि की परिणमनता का मान है उसको समय कहते है और इससे दूसरी परिणमनता हुई वह दूसरा समय। इस तरह अनन्त अतीत प्रवृत्ति हुई वह वर्तमान समय की परपरारूप समझनी। और भविष्य मे होने वाली है वह कार्यरूप से योग्यता रूप समझनी अतीत अनागतव। कोई ढेर अर्थात् रासि नहीं है यह पचास्तिकायके वर्तना रूप जो परिणमन उसके मान को काल कहते है, यह तीसरा काल मे भेद कहा

भाव—जो पर्याय भिन्न २ कार्य करे उन पर्यायो मे कार्यभेद से भिन्नता होती है, इस लिये यह चोथा भाव से भेद कहा अब

द्रव्य का लक्षण कहते हैं जो द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव भेद से समुदाई पने रहे उसको द्रव्य कहते है

तत्रैकस्मिन् द्रव्ये प्रति प्रदेशे स्वस्व एककार्य करण सामर्थ्यरूपा अनन्ता अविभाग रूप पर्यायास्तेषा समुदायो गुण । भिन्न कार्य करणे सामर्थ्य रूप भिन्नगुणस्य पर्याया'। एव गुणा अप्यनन्ता' प्रति गुण प्रतिप्रदेश पर्याया अविभाग रूपा, अनन्तास्तुल्याः प्राय इति ते चास्तिरूपाः प्रतिवस्तुन्यन ता स्ततोऽनन्तगुणा सामर्थ्य पर्याया

अर्थ—उस एक द्रव्य के प्रतिप्रदेश में स्व स्वकार्यकरण विषयक सामर्थ्यरूप अनन्तपयाय है उस अविभागरूप पर्याय के समुदाय को गुण कहते हैं भिन्न कार्य करणे के लिये जो साम र्थ्यरूप पर्याय है वे भिन्नगुण के पर्याय है इस तरह गुण भी अनन्त हैं प्रत्येक गुण और प्रत्येक प्रदेश के विषय अविभागरूप पर्याय अनन्ते हैं और प्राय तुल्य है वे पर्याय प्रत्येक वस्तु में अनन्ते अस्तिरूप हैं उस अस्तिरूप पर्याय से सामर्थ्य पर्याय अनन्त गुण है

विवेचन—अब गुण का लक्षण कहते हैं यथा—गुणानामा श्रयो द्रव्यमिति—एक द्रव्य के विषय स्वविषयिक काय करने का जिसमें सामर्थ्य है उस सामर्थ्यरूप अनन्त अविभाग पर्याय के समुदाय को गुण कहते हैं जैसे—सो ततूवों की एक रस्सी बनाई वे सो ततुवे अविभागरूप से अस्ति पर्याय हैं और उस रस्सी से

जो बाधनादि अनेक कार्य होते हैं वह सामर्थ्य पर्याय है अस्तिरूप पर्याय है वह वस्तु स्वरूप है और सामर्थ्य पर्याय है वह प्रवर्तनात्मक कार्यरूप है उस अस्तिरूप पर्याय के समुदाय को गुण कहते हैं अस्तिरूप पर्याय के अविभाग का वरणन योगस्थान, समयस्थान में है और भिन्न कार्य करने का जिसमें सामर्थ्य है ऐसे अविभागरूप आत्मप्रदेश में वर्तते हुवे जो पर्याय वे भिन्न गुण के पर्याय समझने जैसे ( १ अविभागवीर्य सामर्थ्यरूप पर्याय है उस अनन्त पर्यायो का समुदाय वह वीर्यगुण (२) जानना रूप सामर्थ्य है जिसमें ऐसे जो अविभागरूप पर्याय उस अनन्त पर्याय का समुदाय वह ज्ञानगुण ऐसे गुण एक द्रव्य में अनन्ते हैं उस एक गुण के प्रत्येक प्रदेश में अविभागरूप पर्याय अनन्त है और सब प्रदेशो में सरीखे हैं तथापि पचास्तिकाय में एक अगुरुलघु पर्याय का भेद तारतम्य योगवाला है और पुद्गल परमाणु में काल भेद से अथवा द्रव्य भेद से वर्णादि पर्याय का तारतम्य योग है ये पर्याय अस्तिरूप है कोई पर्याय द्रव्यान्तर में नहीं जाता और प्रदेशान्तर में भी नहीं जाता अस्तिपर्याय से सामर्थ्यपर्याय अनन्त गुण है और वे कार्यरूप है तथाच–महाभाष्ये–यावन्तो ज्ञेयास्तावन्तेव ज्ञान पर्याया ते चास्तिरुपा प्रतिवस्तुनि अनन्तास्ततोप्यनन्त गुणा सामर्थ्यपर्याया

तत्र द्रव्यलक्षण—उत्पाद व्यय ध्रुव युक्त सल्लक्षण द्रव्य, एतद् द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिकोभयनयापेक्षया लक्षण, गुणपर्यायवत् द्रव्य एतत् पर्यायनयापेक्षया, अथ क्रिया-

कारी द्रव्य एतल्लक्षणं स्व स्व शक्ति धर्मापेक्षया। धर्मास्तिकाय
–अधर्मास्तिकाय–आकाशास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय जीवा-
स्तिकाय–कालश्चेति

अर्थ— अब द्रव्य का लक्षण कहते हैं उत्पाद, व्यय, ध्रुवयुक्त शाश्वतपने हो उसको द्रव्य कहते हैं यह लक्षण द्रव्यास्ति, पर्यायास्ति दोनो नयों की अपेक्षा से है तथा गुण, पर्यायसहित द्रव्य यह पर्यायास्ति नय की अपेक्षा से है स्वक्रिया करनेवाला हो यह द्रव्य ये लक्षण अपनी २ शक्ति धर्मापेक्षासे जानना धर्मास्तिकाय, अधमास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल इति

विवेचन—अब द्रव्य का लक्षण कहते हैं उत्पाद अर्थात् नये पर्याय का उत्पन्न होना, व्यय अर्थात् पूर्व पर्याय का विनाश होना और ध्रुव अर्थात् नित्यपना यह तीनो परिणमन सदा परिणमें उस को द्रव्य कहते हैं अर्थात् ये गुण कार्य कारण दोनों रुपसे समकाल ही में परिणमते हैं कारण विना कार्य नहीं होता और जिससे काय न हो उस को कारण भी नहीं समझना जो उपादान कारण है वही कार्य होता है कारणता का व्यय और कार्यता का उत्पाद समकाल में होता है कारणता प्रतिसमय नयी नयी होती है इसी तरह कार्यता भी नयी २ होती है कारणता का भी उत्पाद, व्यय है और कार्यता का भी उत्पाद व्यय है तथा गुणपिंडरुपसे और द्रव्याधाररुपसे ध्रुव है इस परिणति से

प्रगामें वह अस्तिरुप द्रव्य समझना यह लक्षण द्रव्यास्तिक, पर्यायास्तिक दोनो नय को ग्रहण कर के कहा है इसमें ध्रुवपना है वह द्रव्यास्तिक नयग्राही है और उत्पाद व्यय है यह पर्यायास्तिक नयग्राही है यह वाक्य तत्त्वार्थ सूत्र का है एक और दूसरा लक्षण भी तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है एक द्रव्य म स्वकार्य गुणपने वर्तमान वह गुण और पर्याय जो गुण का कारणभूत तथा द्रव्य का भिन्न २ कार्यपने परिणमन उन द्रव्यगुण दोनों को स्वाश्रयी परिणमनपने ये दोनो है जिसमें उस को द्रव्य कहते हैं अर्थात् गुण तथा पर्याय सहित को द्रव्य कहना जिस द्रव्य का दो भाग नहो वह द्रव्य का मुख्य लक्षण है बहुत से परमाणुवों के स्कध को द्रव्य माना है वह उपचार मात्र है परन्तु जिस की परिणति त्रिकाल में भी स्व स्वभाव का त्याग न करे और जो द्रव्य अपनी मूल जाति को न छोडे, जिसका अगुरुलघु षड् गुनहानि वृद्धिरुप चक्र इकठ्ठा फिरे वह एक द्रव्य है. और जिसका पृथक-जुदा हो उसको भिन्न द्रव्य कहना धर्म, अधर्म, आकाश ये एकएक द्रव्य है, और असख्यात प्रदेशी जीव एक अखड द्रव्य है ऐसे जीव सब लोक में अनन्त है वे जीव सिद्ध में बढते हैं और ससारीपने में न्यून होते हैं परन्तु सब जीव सख्या में न्यूनाधिक नहीं होते पुद्गल परमाणु एक आकाश प्रदेश प्रमाण एक द्रव्य है ऐसे परमाणु सब जीवों से तथा सब जीवों के प्रदेशों से भी अनन्त गुणे द्रव्य है स्कध पने तथा छूटा परमाणुपने न्यूनाधिक होते हैं, परन्तु पुद्गल परमाणुपने जो सख्या है उस में न्यूनाधिक नहीं होते यह निश्चयनय से लक्षण कहा

अब व्यवहार नय से लक्षण कहते है स्वक्रिया-प्रवृत्ति का कर्ता हो उसको द्रव्य कहते है जैसे जीव की शुद्ध क्रिया है वह ज्ञानादि गुण की प्रवृत्ति, समस्त ज्ञेय पदार्थ जानने के लिये ज्ञान की प्रवृत्ति वैसे ही सब गुण का कार्य यथा-ज्ञानगुणका कार्य विशेष धर्म का जानना, दर्शनगुण का कार्य समस्त सामान्य भावों का बोध होना, चारित्र गुण का कार्य है स्वरूप रमणता इत्यादि तथा धर्मास्तिकाय का कार्य है गतिगुण प्राप्त हुवे जीव, पुद्गल का चलन सहकारी होना इसी तरह सब द्रव्यों का भी स्वगुणापेक्षासे कार्य समझ लेना यह लक्षण नय द्रव्यों के जो गुण उनकी स्व कार्यानुयायी प्रवृत्ति को अर्थ क्रिया कहते है

द्रव्य छे है —( १ ) धर्मास्तिकाय ( २ ) अधर्मास्तिकाय ( ३ ) आकाशास्तिकाय ( ४ ) पुद्गलास्तिकाय ( ५ ) जीवास्तिकाय ( ६ ) काल इनसे अधिक कोइ पदार्थ नहीं है जो नैयायिकादि सोलह पदार्थ मानते है (१) प्रमाण (२) प्रमेय (३) सशय (४) प्रयोजन (५) दृष्टान्त (६) सिद्धान्त (७) अवयव (८) तर्क (९) निर्णय (१०) वाद (११) जल्प (१२) वितडा (१३) हेत्वाभास (१४) जल्प (१५) जाति और (१६) निग्रह वे मिथ्या है क्यों कि वे प्रमाण को भिन्न पदार्थ कहते है वह तो ज्ञान है और प्रमेय आत्मा का गुण है वह गुण आत्म में रहा हुवा है उसको भिन्न पदार्थ क्यो कहना ? दूसरा जो प्रयोजन सिद्धान्तादिक वह सब जीव द्रव्य की प्रवृत्ति है इस लिये भिन्न पदार्थ नहीं कह सक्ते

वैशेषिक ( १ ) द्रव्य ( २ ) गुण ( ३ ) कर्म ( ४ ) सामान्य ( ५ ) विशेष ( ६ ) समवाय ( ७ ) अभाव यह सात पदार्थ कहते है परन्तु उसमे जो गुण पदार्थ कहा है वह तो द्रव्य में ही है उसको भिन्न पदार्थ कहना अनुचित है कर्म द्रव्य का कार्य है और सामान्य तथा विशेष यह दोनो परिणमन स्वभाव है समवाय तो कारणता रुप द्रव्य का परिवर्तन है और अभाव असत्य को कहते हैं। असत्य को पदार्थ कहना अघटित है और वे नो पदार्थ भी कहते है (१) पृथ्वी (२) अप (३) तेज ( ४ ) वायु ( ५ ) आकाश ( ६ ) काल ( ७ ) दिक ( ८ ) आत्मा ( ९ ) मन। उत्तर–पृथ्वी, अप, वायु, तेज ये आत्मा है, परन्तु कर्म योग शरीर भेद से ये भिन्न है दिशा आकाश मे भिन्न नहीं है और मन आत्मा के ससारीपने उपयोग प्रवर्तन द्वारा होता है इस लिये भिन्न द्रव्य कहना मिथ्या है

वेदान्तिक, सांख्य एक आत्मा अद्वैतयाने–एक ही पदार्थ मानते है उनकी भी यह भूल है क्यों कि जो शरीर है वह रुपी है और पुद्गल द्रव्य का स्कध है इस लिये एक पदार्थ कैसे सिद्ध हो सक्ता है आत्मा और शरीर का आधार आकाश है और वह प्रत्यक्ष सिद्ध है इस लिये मानना ही पडेगा वास्ते अद्वैतपना भी निषेध हुवा

बौद्धदर्शन समय २ नयानता ( १ ) आकाश ( २ ) काल ( ३ ) जीव ( ४ ) पुद्गल ये चार पदार्थ मानते है, उनसे पूछा

जाय कि जीव और पुद्गल एक स्थान मे नहीं रहते किन्तु चलना दि भाव को प्राप्त होते है तो उसकी अपेक्षा कारण १ धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ये दो द्रव्य भी मानने चाहिये

कितनेक ससार स्थिति का कर्ता इश्वर को मानते हैं वे भी अनभिज्ञ हैं जो निर्मल रागद्वेष रहित ऐसे परमेश्वर परके सुख दु ख का कर्ता कैसे हो सक्ता है ? कोई परमेश्वर की इच्छा कहते हैं सो इच्छा तो अधूरे को होती है परिपूर्ण को नहीं होती और कोई लीला मात्र कहते है सो लीला तो अजाण या अधूरा या अपना आनन्द अपने पास न हो वह कर्ता है परन्तु जो सपूर्ण चिदानन्दघन है उस को लीला कैसे घट सक्ती है ?

मीमासादि पाच भूत कहत है उसमें भी चार भूत तो जीव पुद्गल के सबध मे उत्पन्न हुवे है और आकाश द्रव्य है वह लोकालोक भिन्न पदार्थ है इस तरह असत्यपने का निराकरण कर के आगम प्रमाण से और कार्यादि के अनुमान से द्रव्य छे मानना युक्तियुक्त है

> तत्र पञ्चानाम् प्रदेशपिंडत्वात् अस्तिकायत्वं । कालस्य प्रदेशाभावात् अस्तिकायता नास्ति, तत्र काल उपचारत एव द्रव्य न तु वस्तु वृत्या ॥

अर्थ—उन छे द्रव्यों मे पाच सप्रदेशी होने से अस्तिकाय है और काल द्रव्य को प्रदेश के अभाव से अस्तिकाय नहीं कहा है मात्र से द्रव्य है वस्तुवृत्ति से नहीं

विवेचन—युक्तिद्वारा छे द्रव्य मानना सिद्ध हुवा इस लिये अब इनकी प्ररुपणा करते हैं इन छे द्रव्यों में पाच सप्रदेशी है इन के प्रदेश का पिंडपना होनेसे पाच द्रव्यों को अस्तिकाय पना है और छट्ठा काल द्रव्य अप्रदेशी है इस लिये अस्तिकाय पना नहीं कहा काल में जो द्रव्य का व्यवहार होता है वह गौण है जैसे वस्तुगत धर्मास्तिकायादि द्रव्य हैं वैसे काल नहीं है अगर काल को पिंडरूप से द्रव्य मान लिया जाय तो इसका मान कहा है ? जो मनुष्य क्षेत्र मे काल द्रव्य का मान है तो बाहिर के क्षेत्र में नवा पुराणादि तथा उत्पाद, व्यय कौन करता है ? अगर जो चौदह राजलोक व्यापी मानते हैं तो असख्यात प्रदेशी मानना चाहिये और प्रदेश मानने मे अस्ति कायपना होता है अब जो असख्यात प्रदेश मानते है तो वे लोक प्रदेश प्रमाण होवेंगे और असख्यात काल द्रव्य की प्राप्ति होगी परन्तु काल द्रव्य को तो अनन्त माना है इस वास्ते इसको पचास्तिकायिक वर्तना रुप पर्यायपने आरोप करके द्रव्य मानना चाहिये क्यों की अस्तिकायता नहीं है और सब में इसकी वर्तना है यह पक्ष भी सत्य है यथा स्थानागसूत्रे,—" कि मते अद्धा समयेति वुचति ? गोयमा ! जीवा चेव अजीवा चेव ॥ " अर्थात् काल जीव अजीव की वर्तना पर्याय है उनकी उत्पाद व्यय रुप वर्तना ही काल है. परन्तु इसको अजीव द्रव्यमे गवेषणा करनेका कारण यह है कि जीव वर्तना से अजीव वर्तना अनन्तगुणी है इस बहुलता के कारण काल को अजीव द्रव्य माना है यथा—विशेषावश्यक भाष्ये—न पश्यति क्षेत्र कालावसी

तयोरमूर्त्तत्वात् अवधेश्च मूर्त्ति विपयत्वात् वर्तमान रुप तु काल परयति द्रव्य पर्यायत्वात्तस्येति ॥ तथा बावीस हजारी मे भी कहा है— कालस्य वर्तमानादि रुपत्वात् द्रव्योपक्रम उपचारात् ॥ और भगवतीसूत्र के तेरहवें शतक में पुद्‌गल वर्त्तना की अपेक्षा से काल को रुपी कहा हैं

अब पचास्तिकाय का भिन्न २ लक्षण कहते हैं

तत्र गति परिणताना जीव पुद्गलानां गत्युपष्टम्भहेतु धर्मास्तिकाय स चासख्यप्रदेश लोकप्रदेश परिमाणः।

अर्थ—जिनमें गति परिणामी जीव पुद्गलों का जो गत्यालयन हेतु है उसको धर्मास्तिकाय कहते हैं वह धर्मास्तिकाय असख्य प्रदेशी लोकव्यापी लोकमान है सब लोकके एकएक प्रदेश में धर्मास्तिकाय का एकएक प्रदेश अनन्त सबध से हैं ये धर्मादि तीन द्रव्य अचल, अवस्थित और अक्रिय है

स्थिति परिणताना जीव पुद्गलाना स्थित्युपष्टम्भहेतु, धर्मास्तिकाय स चासख्येयप्रदेश लोक परिमाण

अर्थ—जो जीव और पुद्गल स्थितिपने को प्राप्त हुवे हैं उनकी स्थिति का आलवन हेतु अधर्मास्तिकाय है वह असख्यात प्रदेशी लोकके प्रमाण हैं

सर्व द्रव्याणा आधारभूत' अवगाहक स्वभावाना जीव पुद्गलाना अवगाहोपष्टम्भकः आकाशास्तिकाय , सचानन्तप्रदेश लोकालोकपरिमाणः। तत्र जीवादयो वर्तन्ते स लोकः

असख्यप्रदेश परिमाण ततः परमलोकः केवल आकाश प्रदेशव्यूहरूपः स चानन्तप्रदेश परिमाणः

अर्थ—सर्व द्रव्यों का आधारभूत, अवगाहक स्वभावी जीव पुद्गलों को अवगाहन देने में जो आलम्बन हेतु वह आकाशास्तिकाय है वह लोकालोक परिमाण अनन्त प्रदेशी है जिसमें जीवादि द्रव्यों की वर्तना है वह लोक असख्य प्रदेश परिमाण वाला है उसके आगे केवल आकाश प्रदेश व्यूह रूप अनन्त प्रदेशी जीवादि पाच द्रव्यों से रहित जो आकाश द्रव्य है उसीको अलोकाकाश कहते है

कारणमेव तदन्त्य सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः एक रस वर्णगन्धो द्विस्पर्शी कार्यलिंगीच॥ पूरण गलन स्वभाव पुद्गलास्तिकाय स च परमाणुरूपः ते च लोके अनन्ताः, एकरूपा परमाणव अनन्ता द्वयणुका अप्यनन्ता', त्र्यणुका अप्यनन्ताः, एव सख्याताणुकस्कन्धा अप्यनन्ताः, असख्याताणुक स्कन्धा अप्यनन्ता , अनन्ताणुकस्कन्धा अप्यनन्ताः, एकस्मिन् आकाशप्रदेशे एवसर्व लोकेऽपि ज्ञेय एव चत्वारोऽस्तिकायाः अचेतना'॥

अर्थ—द्वयणुकादिस्कन्धोंका अन्त्यम् अर्थात् मूल कारण ही केवल परमाणु है वह सूक्ष्म है और नित्य है उसमे एकरस एक वर्ण, एक गध और दो स्पर्श होते हैं और वह कार्यलिंगी है पूरण गलन स्वभाव वाला परमाणु है एक रूपवाले परमाणु

लोक के विषय अनन्त हैं इसी तरह दो अणुवाले स्कंध अनन्त हैं, तीन अणुवाले स्कंध अनन्त हैं, एवं यावत् सख्याते अणुवाले स्कंध अनन्ते हैं असंख्याते अणुवाले स्कंध अनन्ते हैं और अनन्ते अणुवाले स्कंध भी अनन्ते हैं इस तरह एकैक आकाश प्रदेश में तथा सर्व लोक में भी अनन्ते २ समझना ये चारों अस्तिकाय अचेत—चेतना रहित अर्थात् जड है

विवेचन—अब पुद्गल द्रव्य का स्वरुप लिखते हैं, जो पूरण अर्थात् वर्णादि गुण की वृद्धि और गलन अर्थात् वर्णादि गुण की हानि एसा जिसमें स्वभाव हो उसको पुद्गलास्तिकाय कहते हैं उसका मूल द्रव्य परमाणु रुप हैं अब परमाणु का लक्षण बतलाते हैं द्व्यणुकादि जितने स्कंध हैं उन सब का मूल कारण परमाणु है परन्तु परमाणु का कारण कोई नहीं हैं न इस को किसीने पैदा किया है और न किसी के मिलावट अथात् मिश्रता से उत्पन्न हुवा है वह परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म एक आकाश प्रदेश की अवगाहना के तुल्य है परन्तु एक आकाश प्रदेश की अवगाहना में अनन्ते परमाणु समाये हुवे हैं यद्यपि एक परमाणु में दूसरा कोइ द्रव्य नहीं समा सक्ता इस लिये परमाणु सब से सूक्ष्म और नित्य है जितने परमाणु हैं वे सब स्कंधादि अनेकपने परिणमते हैं परन्तु वे कभी विनाश को प्राप्त नहीं होते जो एक परमाणु है उस के विषय एक रस, एक वर्ण, एक गंध और दो स्पर्श ( सूक्ष्म स्कंध में समुच्चय चार स्पर्श होते हैं रूक्ष, स्निग्ध, शीत, उष्ण इनमें से दो प्रतिपक्षि छोड के शेष

दो स्पर्श, ) हो वह परमाणु द्रव्य समझना यहा कोइ शका करे कि परमाणु द्रव्य दृश्य नहीं है उस को कैसे मानना ? उत्तर— जो घट पट शरीरादि कार्य दृश्य हैं, ग्राह्य है, और रूपी है इस लिये इसके सबधका कारण परमाणु है वह अति सूक्ष्म है इन्द्रियों-द्वारा अग्राह्य है परन्तु रुपी है क्योंकि अरुपीसे रुपी कार्य नहीं होता परमाणु रुपी है इसलिये इसका स्कध भी रुपी होता है और आकाशप्रदेश अरुपी है तो उसका स्कध भी अरुपी है वास्ते परमाणु मानना चाहिये। परमाणुके दो प्रदेशीस्कध अनन्त हैं और छूटे परमाणु भी अनन्त हैं वे स्कधमें समिलित होते हैं, और स्कधमें मिले हुवे परमाणुरुपमें छूटे भी होते हैं इनकी वर्गणा अट्ठाईस प्रकारसे हैं जिनका स्वरुप " कर्म प्रकृति ग्रन्थ " से देख लेना इस तरह केवल एक परमाणु भी अनन्त हैं दो मिलके स्कधपने को प्राप्त हुवे भी अनन्ते है एव सख्यात अणुके स्कध भी अनन्ते हैं असख्यात अणुके स्कध भी अनन्ते हैं और अनन्ते अणुके स्कध भी अनन्ते हैं ये जो स्कध हैं वे एक आकाश प्रदेश को अवगाह करके रहते है और यावत् असख्याते आकाश प्रदेश भी अवगाह करके रहते हैं परन्तु एक वर्गणा की अवगाहना अगुलके असख्यातवें भाग है इससे जादा नहीं और अनन्त वर्गणा मिलनेसे अगुल, हाथ, गाउ और योजनादि की अवगाहना भी होती है धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ये चार द्रव्य अचेतन, अजीव, और ज्ञानरहित है

चेतना लक्षणो जीव, चेतना च ज्ञानदर्शनोपयोगी अनन्तपर्याय पारिणामिक कर्तृत्व भोक्तृत्वादि लक्षणो जीवास्तिकाय'

अर्थ—चेतनालक्षण है जिसका वह जीव है और ज्ञान-दर्शन की उपयोगिता हो उसको चेतना कहते हैं पुन अनन्त पर्याय परिणामी, कर्त्ता, भोक्तादि अनन्त शक्ति का पात्र ऐसा लक्षण हो उसको जीवास्तिकाय कहते हैं

विवेचन—अब जीव द्रव्य का स्वरुप कहते हैं चेतना= बोध शक्ति है जिसमें उसको जीव कहते हैं स्वपरिणमन और परपरिणमन सब को जाने वह जीव तथा सर्व द्रव्य हैं — वे अनन्त सामान्य स्वभाव और अनन्त विशेष स्वभाव वाले हैं उसमें सर्व द्रव्य के विशेष स्वभाव के अवबोध को ज्ञान कहते हैं और सामान्य स्वभाव के अवबोध को दर्शन कहते हैं ऐसे ज्ञान दर्शन का उपयोगी और जो अनन्त पर्याय उसका परिणामिक कर्त्ता, भोक्तादि अनन्त शक्तिका पात्र हैं उसको जीव कहते हैं उक्त च–नाण च दसण चेव चरित च तवो तहा, वीरिय उवओगो अ एव जीवस्स लक्खण ( उत्तराध्ययन वचनात् )

चेतना लक्षण, ज्ञान, दर्शन चारित्र सुख वीर्यादि अनन्त गुण का पात्र, स्वस्वरुप भोगी और अनवच्छिन्न जो स्यानस्था उसका भोक्ता, अनन्त स्वगुण जो स्व स्व कार्य शक्ति उसका कर्त्ता, परभाव का अकर्त्ता, अभोक्ता, स्वक्षेत्रव्यापी, अनन्त, आत्म-सत्ता ग्राहक, व्यापक और आनन्दरुप हो उसको जीव समझना

पचास्तिकायाना परत्वापरत्वे नवपुराणादि लिङ्ग व्यक्त-वृत्ति वर्तना रुपपर्यायः काल, अस्य चाप्रदेशिकत्वेन आस्तिका यात्वाभावः । पञ्चास्तिकायान्तर्भूतपर्यायरुप-तैवास्य। एते पञ्चास्तिकायाः, तत्र धर्माधर्मौ लोकप्रमाणा-सख्यप्रदेशिकौ, लोकप्रमाण प्रदेश एव एकजीव । एते जीवाअप्यनन्ताः, आकाशोहि अनन्त प्रदेश प्रमाणः, पुद्गल परमाणु स्वय एकोऽप्य अनेक प्रदेश बध हेतुभूत द्रव्ययुक्त-त्वात् अस्तिकाय', कालस्य उपचारेण भिन्न द्रव्यता ऊक्ता सा च व्यवहार नयापेक्षया आदित्यगति परिच्छेद परि-णामः कालः समयक्षेत्र एव एप व्यवहारकालः समयावलि-कादिरुप इति ॥

अर्थ—पचास्तिकायों में पूर्वत्व परत्व–पहला पीछे तथा पुद्गल स्कधकी नव पुरानरुप स्थिति लक्षण वर्तना पर्याय को काल कहते हैं प्रदेशोंके अभाव होनेसे इसको अस्तिकाय नहीं कहा यह काल द्रव्य पचास्तिकाय में अन्तर्भूत पर्यायरुप है और शेप ये पाच अस्तिकाय हैं–(१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय लोक प्रमाण असख्य प्रदेशी हैं (३) लोकाकाशप्रमाण प्रदेशवाला एक जीव है, एसे जीव अनन्त हैं (४) आकाश अनन्त प्रदेश प्रमाण है (५) पुद्गलपरमाणु स्वयम् एक होनेपर भी अनेक प्रदेश बन्ध हेतुभूत द्रव्ययोग्यता होनेसे अस्तिकाय कहा है कालको उपचार मात्र से ही भिन्न द्रव्य कहा है व्यवहार नयकी अपेक्षा से सूर्यकी गति के परिज्ञान से जो आवलिकादिका मान है उसका व्यवहार केवल मनुष्य क्षेत्रमें ही है

विवेचन—अब कालका लक्षण कहते हैं जो पचास्तिकाय में परत्व, अपरत्व–जैसे पुद्गल द्रव्य में पहला, पिछला रूप व्यवहारका हेतु तथा नवीनता, जीर्णता करने में प्रगट है वृत्ति जिसकी उस वर्तनारूप पर्यायको काल कहते हैं अप्रदेशी होने से इसको अस्तिकाय नहीं कहा इसका पचास्तिकायमें अन्तरभूत पर्यायरूप परिणमन है, तत्त्वार्थ वृत्ति में इसको धर्मास्तिकायादि का पर्याय कहा है

पाच अस्तिकाय है (१) धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है असख्यात प्रदेशी है और लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं (२) एव अधार्मास्तिकाय (३) जीव द्रव्य भी लोक प्रमाण असख्यात प्रदेशी है परन्तु अपनी अवगाहना पने व्यापक है ये जीव अनन्त हैं और अकृत, शाश्वत, अखड द्रव्य है सत् चिदानदमय है परन्तु परपरिणामिक, पुद्गलग्राही और पुद्गलभोगी होने से प्रति समय नये कर्म बाधता हुवा ससारी हो गया वही जिस समय स्वरूप ग्राही, स्वरूप भोगी होगा उस समय सब कर्मोंसे रहित होकर परमज्ञानमयी, परम दर्शनमयी, परमानन्दमयी, सिद्ध, बुद्ध, अनाहारी, अशरीरी, अयोगी, अलेसी, एकान्तिक, नि प्रयासी, अविनाशी स्वरुप सुखका भोगी शुद्ध सिद्ध होगा इस वास्ते हे चेतन ! ! ! यह परभाव, अभोग्य, सब जगतकी उच्छिष्ट=एठ तेरे ता-य है तू स्वभावभोगीताका रसिक होकर स्व स्वरुप प्रकाश और अपने आनन्द को प्रगट करने के लिये निर्मलता को प्राप्त कर

(४) आकाश लोकालोक प्रमाण एक द्रव्य है अनन्त

प्रदेशी है (९) पुद्गल परमाणुरूप है ये परमाणु अनन्ते हैं इस वास्ते पुद्गल द्रव्य अनन्त हैं. प्रदेशके सबंध विना परमाणु द्रव्यको अस्तिकाय क्यों कहा ? उत्तर—परमाणु तो एक प्रदेशी है परन्तु अनन्त परमाणुवों से मिलनेकी सत्तायुक्त योग्यताके कारण पुद्गल द्रव्यको अस्तिकाय कहा है और काल द्रव्यको केवल उपचार से भिन्न द्रव्य कहा है। व्यवहारनयकी अपेक्षासे सूर्यकी गति परिज्ञान जो समय आवलिकादि का मान है उसका व्यवहार मनुष्य क्षेत्र में है और मनुष्यक्षेत्रसे बाहिर जो जीव हैं उनके आयुष्य का मान सर्वज्ञोंने इसी मनुष्य क्षेत्रके परिमाणमे कहा है इसलिये काल पिंडरुपसे भिन्न द्रव्य सिद्ध नहीं होता किन्तु उपचार से ही सिद्ध है जो प्रत्येक द्रव्यमें अनेक पर्याय है उसमें किसी भी पर्यायको द्रव्यरूप नहीं कहा तो एक वर्तना पर्यायमें द्रव्यारोप किस वास्ते किया ? उत्तर—वर्तना परिणति सब पर्यायको सहकारी है और सब द्रव्यकों सहकारी है इसलिये यह मुख्यपर्याय है वास्ते इस वर्तना पर्यायमें द्रव्यारोप किया है और अनादि कालसे इसी तरह की व्याख्या है

एते पचास्तिकायाः सामान्य विशेष धर्ममया एव तत्र सामान्यत' स्वभाव लक्षणं द्रव्यव्याप्यगुणपर्याय व्यापक त्वेन परिणामिक लक्षण स्वभाव , तत्र एक नित्य निरवयवं अक्रिय सर्वगतं च, सामान्य। नित्यानित्य निरवयव साव-यव , सक्रियताहेतु देश गतः सर्वगत च विशेष पदार्थगुण प्रवृत्तिकारण विशेषः। न सामान्य विशेष रहित नविशेषः सामान्य रहित ॥

अर्थ—यह पचास्तिकाय सामान्य विशेष धर्ममय है उस में सामान्य स्वभावका लक्षण कहते हैं द्रव्यमें व्याप्य हो और गुणपर्यायमें व्यापकरुपसे सदा परिणत होता हो उसको सामान्य-स्वभाव कहते हैं वह एक है, नित्य अर्थात् अविनाशी है, निरअव यव है, अक्रिय और सर्वगत है अब विशेषस्वभाव कहते हैं नित्यानित्य, निरअवयव सा अवयव, सक्रियता हेतु और देशगत सर्वगत हो उसको विशेषस्वभाव कहते हैं वह जानने योग्य विशेष पदार्थ के गुणोंकी जो प्रवृत्ति उसका कारण है परन्तु सामान्य विशेषसे रहित नहीं है और न विशेष सामान्य से रहित है

**विवेचन**—अब सामान्य और विशेषस्वभाव का लक्षण कहते हैं जो पचास्तिकाय है वह सामान्य और विशेष धर्मी है सामान्य स्वभाव का लक्षण विशेषावश्यक में इस तरह कहा हैं जो द्रव्य में व्याप्य हो तथा गुण पर्याय मे व्यापक रुप से सदा परि णमता हो उसको सामान्य स्वभाव कहते हैं सामान्य स्वभाव होता है वह एक नित्य अर्थात् अविनाशी, निरवयव विभावरुप अवयव से रहित, और सर्वगत अर्थात् सवमें व्यापक होता हैं जैसे–जीवादि द्रव्य में जो एकत्व है वह पिंडरुप से है वह पिंड पना सब द्रव्य में है सब गुण, पर्याय स्वस्व रुपसे अनेक है परन्तु वे समुदाय पिंडको छोड कर अलग नहीं होते वह सामान्य स्वभाव उस सामान्य स्वभाव के दो भेद हैं (१) अस्तित्वादि जो सर्व पदार्थ में है उसको महासामान्य कहते हैं इसकी प्रतीति श्रुतज्ञान से होती है प्रत्यक्ष अवधिदर्शन, केवलदर्शनवाले देख

सक्ते हैं तथा ( २ ) वृक्ष, आम्र, निम्ब, जंबू प्रमुख अनेक हैं परन्तु वृक्षत्व सबमें है इसको अवान्तर सामान्य कहते हैं यह चक्षु दर्शन तथा अचक्षु दर्शन से ग्राह्य हैं और अस्तित्व, वस्तुत्वादि सामान्यस्वभाव अवधि दर्शन तथा केवलदर्शन से ग्राह्य है. विशेष धर्म ज्ञानगुण मे ही ग्राह्य होता है अब विशेष धर्म का लक्षण कहते हैं जैसे--किसी अपेक्षा मे नित्य एव अनित्य, किसी रीतिमे अवयव सहित और अवयव रहित (अविभाग पर्याय से सावयव, सामर्थ पर्याय से निरवयव ) और सक्रिय हेतु देशगत जो गुण है वह गुणान्तर में व्यापक नहीं होता और जो गुण समस्त द्रव्य में व्यापक हो उसको सर्वगत कहते हैं ऐसा जो धर्म वे सब विशेष स्वभाव है इस तरह विशेष जानने योग्य पदार्थ के गुण की प्रवृत्ति का कारण विशेष स्वभाव है और जो कार्य करे उस गुणको भी विशेष धर्म समझना परन्तु विशेष सामान्य से रहित नहीं है और न सामान्य विशेषसे रहित है।

ते मूल सामान्यस्वभावाः षट । ते चामी ( १ ) अस्तित्व, ( २ ) वस्तुत्व, ( ३ ) द्रव्यत्व, ( ४ ) प्रमेयत्व, ( ५ ) सत्व, ( ६ ) अगुरुलघुत्व । तत्र १ नित्यत्वादिना उत्तर सामान्याना परिणामिकत्वादिना निःशेषस्वभावानामाधारभूत धर्मत्वमस्तित्वं ( २ ) गुणपर्यायाधारत्व वस्तुत्व ( ३ ) अर्थक्रियाकारित्व, द्रव्यत्व अथवा उत्पादव्ययोर्मध्ये उत्पादपर्यायाणा जनकत्व प्रसवस्य आविर्भाव लक्षणव्ययीभूत पर्यायाणा तिरोभाव्यभाव रूपस्याः

(स्यायाः)। शक्तेराधारत्व द्रव्यत्व (४) स्वपर व्यवसायिज्ञान प्रमाण, प्रमीयते अनेनेति प्रमाण तेन प्रमाणेन प्रमातु योग्य प्रमेय ज्ञानेन ज्ञायते तद्योग्यताल्व प्रमेयत्व (५) उत्पाद व्ययध्रुवयुक्त सत्त्व (६) षड्गुण हानि वृद्धि स्वभावा अगुरूलघुपर्यायास्तदाधारत्व अगुरुलघुत्व एतेषट्स्वभावाः सर्व द्रव्येषु परिणमति तेन सामान्य स्वभावाः

अर्थः—उस सामान्य स्वभाव के मुख्य छे भेद हैं और वे ये हैं ( १ ) अस्तित्व ( २ ) वस्तुत्व ( ३ ) द्रव्यत्व ( ४ ) प्रमेयत्व ( ५ ) सत्त्व ( ६ ) अगुरुलघुत्व तत्र ( १ ) नित्यत्वादि उत्तर सामान्य स्वभावों के, परिणामिकत्वादि विशेष स्वभावोंके आधारभूत धर्मको अस्तिस्वभाव कहते हैं ( २ ) गुणपर्याय के आधारभूत पदार्थको वस्तुस्वभाव कहते है ( ३ ) अर्थक्रियाके आधार को द्रव्यत्व स्वभाव कहते हैं, अथवा—उत्पाद, व्यय में उत्पाद पर्यायों का प्रसव—आविर्भाव लक्षण जो शक्ति तथा व्ययीभूत पर्यायोंकी तिरोभाव—अभावरूप शक्ति उसके आधारको द्रव्यत्व स्वभाव कहते हैं ( ४ ) स्वपर ग्राहक ज्ञानवही प्रमाण है, जिमसे प्रमाणित किया जाय वही प्रमाण शब्दका वाच्य हैं ज्ञानसे अवबोध करनेवाली शक्ति को प्रमेयत्व स्वभाव कहते हैं ( ५ ) उत्पादव्यय ध्रुवयुक्त हो उसको सत्त्व कहते हैं ( ६ ) षड्गुण हानि वृद्धिरुप अगुरूलघु पयाय है उसके आधारत्व को अगुरुलघु स्वभाव कहते हैं ये छे स्वभाव सब द्रव्यों में परिणत होते हैं इसवास्ते सामान्य स्वभाव है

विवेचन—उस सामान्य स्वभाव के मुख्य छे भेद हैं वे सवद्रव्यों में व्यापकपने हैं (१) अस्तित्व (२) वस्तुत्व (३) द्रव्यत्व (४) प्रमेयत्व (५) सत्त्व (६) अगुरूलघुत्व ये परिणामिक रुपसे परिणत है परन्तु किसी की सहायतासे नहीं है (१) सब द्रव्यों में उत्तर सामान्य स्वभाव नित्य अनित्यादि तथा—विशेष स्वभाव परिणामिकादिके आधारभूत धर्म को अस्तिस्वभाव कहते हैं (२) गुणपर्याय के आधारभूत पदार्थ को वस्तु स्वभाव कहते हैं (३) अर्थ जो द्रव्यकी क्रिया जैसे—धर्मास्तिकाय की चलन सहायक क्रिया, अधर्मास्तिकाय की स्थिर सहायक क्रिया, आकाशद्रव्य की अवगाहनरुप क्रिया, जीवकी उपयोग लक्षण क्रिया और पुद्गलों की मिलन विखरनरूप क्रिया को प्राप्त करनेका जो धर्म अर्थात् पर्याय की प्रवृत्ति को अर्थ क्रिया कहते हैं उस अर्थ क्रिया के आधार धर्मको द्रव्यत्व स्वभाव कहते हैं

प्रकारान्तर लक्षण कहते हैं उत्पादव्यय की प्रसव शक्ति अर्थात् आविर्भावशक्ति तथा व्ययीभूत पर्याय की तिरोभाव—अभावरूप जो शक्ति उसका जो आधारभूत धर्म उसको द्रव्यत्व स्वभाव कहते हैं

(४) स्व आत्मा और पर अर्थात् पुद्गलादि अन्य द्रव्यों को यथार्थपने जाने उसको ज्ञान कहते हैं वह ज्ञान पाच प्रकारका है, उस ज्ञानके उपयोग में आनेवाली शक्ति को प्रमेयत्व कहते हैं वह प्रमेयत्व सब द्रव्यों का मुख्य धर्म हैं प्रमाणसे प्राप्त हुई जो वस्तु उसको प्रमेय कहते हैं गुणपर्याय सब प्रमेय हैं

आत्माके ज्ञानगुण में प्रमाणपना और प्रमेयपना दोनों धर्म है वह अपने प्रमाण का आप ही कर्ता है

दर्शनगुणका प्रमाण ज्ञानगुण करता है क्यों कि दर्शनगुण सामान्य है जो सावयव होता है वह विशेष ही होता है और विशेष होता है वह ज्ञानसे जाना जाता है दर्शन है वह सामान्य धर्मग्राही है उसको भी प्रमाण कहते हैं परन्तु प्रमाण के जहा भेद किये हैं वहा ज्ञान को ही ग्रहण किया है इसका कारण यह है कि दर्शन उपयोग व्यक्त-प्रगट नहीं है इस वास्ते प्रमाण में गवेषणा नहीं की प्रमाण के मुख्य दो भेद हैं ( १ ) प्रत्यक्ष ( २ ) परोक्ष " स्पष्ट प्रत्यक्ष परोक्षमन्यत् " इति स्याद्वाद रत्नाकर वाक्यात् ( ५ ) उत्पाद, व्यय, ध्रुव ये तीनों परिणाम प्रति समय प्रत्येक वस्तु में परिणमें उसको सत् कहते हैं, उस सत् भावको सतत्व स्वभाव कहते हैं ( ६ ) अनन्तभाग हानि, असख्यातभाग हानि २, सख्यातभाग हानि ३, सख्यातगुणहानि ४, असख्यातगुण हानि ५, अनन्तगुणहानि ६ यह छे प्रकार की हानि तथा-अनन्तभाग वृद्धि १, असख्यातभागवृद्धि २, सख्यात भागवृद्धि३, सख्यातगुणवृद्धि४, असख्यातगुणवृद्धि ५, अनतगुणवृद्धि इस तरह छे प्रकार की हानि और छे प्रकारकी वृद्धि यह अगुरुलघु पर्याय की है यह सब द्रव्यों के प्रत्येक प्रदेश में परिणमती है प्रति समय प्रति प्रदेश में पूर्वोक्त प्रकारसे न्यूनाधिक हुवा करती हैं इसतरह बारह प्रकारकी परिणमन शक्ति को अगुरुलघुत्व स्वभाव कहते हैं तत्त्वार्थ टीका के पाचवें अध्ययनमें अलोकाकाश के अधिकार में

कहा है इस तरह ये छ स्वभाव सब द्रव्यों में परिणमते हैं यह द्रव्यका मुख्य स्वभाव है प्रदेश का भिन्नपना और द्रव्यका भिन-पना यह अगुरुलघु के भेदसे होता है इस लिये ये छे सामान्य स्वभाव हैं, यह द्रव्यास्तिक धर्म है और इसका जो परिणमन है वह पर्यायास्तिक धर्म है किसीका कहना है पर्यायका पिंड है वह द्रव्य है परन्तु द्रव्यपना भिन्न नहीं है जैसे—धुरी, चक्र, डाड़ी जुहा प्रमुख समुदायको गाड़ी कहते है वह गाड़ी उन अवयवों से भिन्न नहीं है इसी तरह ज्ञानादि गुणमे आत्मा भिन्न नहीं है ? उत्तर—जो ज्ञानादि गुणमें समुदाय रुपसे स्थित हो द्रव्यमें समि-लित न हो उसको पर्याय कहते हैं और अर्थ क्रियात्मक समुदाय रुप वस्तुको द्रव्य कहते है अर्थात् द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक दोनों मिलनेसे द्रव्य कहलाता है उक्तच—" समतो दव्वा पज्जवरहिआ न पज्जवादव्वओधि उत्पत्ति ए । इति सामान्य स्वभावा

तत्र अस्तित्व उत्तर सामान्य स्वभावगम्य ते चोत्तर सामा य स्वभावा अनन्ता अपि वक्तव्येन त्रयोदश । (१) अस्तिस्वभावः (२) नास्ति स्वभाव. (३) नित्यस्वभावः (४) अनित्यस्वभावः (५) एकस्वभावः (६) अनेकस्वभावः (७) भेदस्वभावः (८) अभेदस्वभाव' (९) भव्यस्वभाव (१०) अभव्यस्वभावः (११) वक्तव्यस्वभावः (१२) अवक्तव्यस्वभाव (१३) परमस्वभावः इत्येव रुपं वस्तु सामान्यानन्तमयम् ॥

अर्थ—वह अस्तित्व उत्तरसामान्य स्वभाव गम्य है और

विवक्षित द्रव्यादिमें उस पर द्रव्यादिका सर्वदा अभाव है इस अभावको नास्ति स्वभाव कहते हैं जैसे—जीवमें अपने ज्ञानदर्शनादि भावों की अस्तिता है और पर द्रव्यादिमें रहे हुवे भावोंकी नास्तिता है परन्तु वह नास्तिता उस द्रव्यमें अस्ति रुपसे वर्तती है जैसे-घरमें घटत्वादि धर्मका अस्तित्व है परन्तु पटत्वादि परधर्मोंकी नास्तिता है इस तरह सब जगह समझ लेना

विवेचन—पूर्वोक्त अस्तिताभावको नास्ति स्वभाव कहते हैं श्रीभगवतीसूत्र में कहा है—" हे गोतम ? अत्थित अत्थिते परिणमइ नत्थित नत्थिते परिणमइ " तथा ठाणागसूत्रमें—" १ सियअत्थि २ सियनत्थि ३ सियअत्थिनत्थि ४ सियअवत्तव्व " यह चोभगी कही है और विशेषावश्यक सूत्रमें कहा है कि जो वस्तुका अस्तित्व नास्तित्व जाने वह सम्यग्ज्ञानी और जो न जाने या अयथार्थ जाने वह मिथ्यात्वी उक्त च— सदसद् विशेषणाओ भवहेउजहच्छियओवलभाओनाणफलाभावाओ मिच्छादिठि मअत्राण ॥ १ ॥ इस गाथाकी टीकामें—स्याद्वादोपलक्षित वस्तु स्याद्वादश्च सप्तभगी परिणाम एकैकस्मिन् द्रव्येगुणेपर्यायेच सप्त सप्तभगा भवन्त्येन अत अनन्तपर्यायपरिणते वस्तुनिश्चनन्त सप्तभगा भवन्ति इति रत्नाकरावतारिकाया ये सातो भागे द्रव्य, गुण, पर्यायों में स्वरूप भेदसे होते हैं इन सात भागों के परिणामको स्याद्वाद कहते हैं

## ॥ सप्त भंगीमाह ॥

तथाहि स्वपर्यायैः परपर्यायैरभयपर्यायैः सद्भावेनास द्भावेनोभयेन वार्पितो, विशेषतः कुभ. अकुभः कुभाकुभो वा

अवक्तव्योभयप्पादिभेदो भवति सप्तभंगी प्रतिपाद्यते इत्यर्थः श्रोष्ठग्रीवाकपोलकुक्षितृ नादिभिः स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पित विशेषतः कुम्भ कुम्भो मण्यते सन् घट इति प्रथमभंगो भवति एव जीवः स्वपर्यायैः ज्ञानादिभिः अर्पित. सन् जीवः

अर्थ–जैसे–स्वपर्याय से सद्भाव, पर पर्याय से असद्भाव, उभय पर्याय से सद्असद्भाव इस रूपको स्याद्पदपूर्वक स्थापना करने से कुम्भ, अकुम्भ, कुम्भाकुम्भ, अवक्तव्य, कुम्भ अवक्तव्य, अकुम्भअवक्तव्य, कुम्भाकुम्भ अवक्तव्य इस तरह सप्तभंगी होती है प्रथम भग लक्षण–जैसे–ओष्ठग्रीवादि स्वपर्याय से अस्तित्वेन अर्पित जो कुम्भ है वह अस्तिकुम्भ इसी तरह ज्ञानादि स्वपर्याय सहित को स्यात् अस्ति जीव कहे यह प्रथम भग

विवेचन—यह सप्तभंगी स्वद्रव्यकी अपेक्षा से है परकी अपेक्षा से नहीं जैसे–स्वधर्म विषयी परिणमन यह अस्ति धर्म है और पर धर्म का जो असद्भाव यह नास्ति धर्म है उसको स्यात् पदपूर्वक प्ररूपणा करनेसे सप्तभंगी होती है (१) स्यात् अस्ति घट (२) स्यात् नास्ति घट (३) स्यात् अवक्तव्य घट (४) स्यात् अस्ति नास्ति घट (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य घटः (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य घट (७) स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य घट इन सात भागों में प्रथम के तीन भग सकलादेशी कहलाते हैं और शेष चार भागे विकलादेशी हैं अब प्रत्येक भंगको दृष्टांतद्वारा समझाते है यथा–ग्रीवा कपोल कुक्षि आदि स्वपर्यायों से घट है

इस में स्वपर्यायकी अस्तिता अर्पण करने से यह घट घट धर्म से अस्ति है परन्तु नास्ति धर्मकी अस्ति सापेक्षता के लिये स्यात् पद पूर्वकत्व कहना इस लिये स्यात् अस्ति घट यह प्रथम भग इसी तरह जीवके ज्ञानादि गुण पर्याय नित्यत्वादि स्वभावमयी होने से स्यात् अस्ति जीव एव " सर्वत्र भावनीयम् " यद्यपि जीव और अजीव द्रव्यकी नित्यता सरीखी भासमान होती है परन्तु वे दोनो एक नहीं है और जीव सब एकजातीय द्रव्य है परन्तु एक जीव में जैसा ज्ञानादि गुण है वैसा दूसरे में नहीं है सब द्रव्यत्व धर्म से अस्ति है, एव स्यात अस्ति जीव इति प्रथम भग ।

तथा पटादिगतैस्त्वक्त्राणादिभिः परपर्यायैरसद्भावेनार्पितः अविशेषत अकुभो भवति सर्वस्यापि घटस्य परपर्यायैरसत्व विवक्षायामसन् घट' एव जीवोऽपि मूर्त्तत्वादि पर्यायै असन् जीव इति द्वितियो भङ्ग ।

अर्थ—त्वक् त्राणादि जो पटकी पर्याय है उस परपर्याय की अपेक्षा से घट असत् है—अकुभ है जैसे—परपर्यायकी अपेक्षा से घट असत् है वैसे ही जीव भी मूर्त्तत्वादि पर्यायकी अपेक्षा से असत् है इति स्यात् नास्ति जीवः । यह द्वितीय भग।

विवेचन—पट में स्थित जो त्वक्=चर्म, त्राणादि=रक्षणादि पर्याय हैं वे घट में नहीं है किन्तु पट में है घट में इन पर्यायों की नास्ति है अर्थात् घट में उन पर्यायों का असद्भाव है इस लिये परपर्यायकी अपेक्षा से घट नास्ति है इसी तरह जीव में भी

मूर्तीत्व, अचेतनत्वादि पर्यायों की नास्ति है इस लिये जीव भी परपर्याय से नास्ति है क्यों कि परपर्यायकी नास्तिता परिणमन द्रव्य में है यह स्यात् नास्ति नामक दूसरा भग कहा

तथा सर्वोघटः स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्या सत्वासत्वाभ्यामर्पितो युगपद्वक्तुमिष्टोऽवक्तव्यो भवति स्वपर-पर्यायसत्वासत्वाभ्या एकैकेनाप्यसाकेतिकेन शब्देन सर्वस्यापि तस्य वक्तुमशक्यत्वादिति, एवं जीवस्यापि सत्वासत्वाभ्यामेकसमयेन वक्तुमशक्यत्वात् स्यादवक्तव्यो जीवः इति तृतीयो भङ्ग । एते त्रय' शकलादेशाः सकल जीवादिक वस्तुग्रहणपरत्वात् ।

अर्थ---घटादि सब वस्तु की सद्भाव रुप स्वपर्याय मे अस्तिता है और परपर्याय से नास्तिता है अत स्वपर्याय की अस्तिता और परपर्याय की नास्तिता ये दोनो धर्म समकालिक है परन्तु एक समय में कहे नहीं जाते क्योंकि इन दोनों धर्मों के उच्चारार्थ कोइ एसा साकेतिक शब्द नहीं कि जो एक समय में कहने के लिये समर्थ हो इस लिये वस्तु स्वभाव के दोनों धर्मों का ज्ञान कराने के लिये स्यात् अवक्तव्य ऐसा वचन कहा किसी को ऐसा बोध न होजाय की वचन मे सर्वथा अगोचर है इस दोप को निवारण करने के लिये स्यात् शब्द का प्रयोग किया, इति स्यात् अवक्तव्य घट इसी तरह जीवका भी अस्ति नास्ति धर्म है वह एक समय नहीं कहा जाता इस लिये स्यात् अवक्तव्य जीव ये

तीनो भग सकलादेशी है सर्व वस्तु को सम्पूण रुप से ग्रहण करता है

अथ चत्वारो विकलादेशा तत्र एकस्मिन् देशे स्वपर्याय सत्वेन अन्यत्र तु परपर्यायासत्वेन सत्र असत्र भवति घटोऽयत्र एव जीवोऽपि स्वपर्यायैं सन् परपर्यायैः असन् इति चतुर्थो भग ।

अर्थ—अथ चार विकलादेशी भग कहते है जो वस्तुस्वरुप का एक देश माही हो उसको विकलादेशी कहते हैं जैसे–एकदेश में स्वपर्याय की सत्यता परपर्याय की असत्यता निविचित हो उस समय वस्तु सत्य, असत्यरुप है अर्थात् घट है और घट नहीं भी है इसी तरह जीव भी स्वपर्याय से सत् परपर्याय से असन् एक समय अस्ति नास्तिरुप है परन्तु कहने के लिये असख्याता समय चाहिये वास्ते स्यात् पूवक–स्यात् अस्ति नास्ति यह चोथा भग कहा

तथा एकस्मिन् देशे स्वपर्यायैः सद्भावेन विवक्षित अन्यत्र तु देशे स्वपरोभयपर्यायैः सत्वासत्वाभ्या युगपत्सा केतिकेन शब्देन वस्तु विवक्षित सन् अवक्तव्यरुप पचमो भङ्गो भवति एव जीवोऽपि चेतनत्वादिपर्यायै. सन् शेषैर-वक्तव्य इति ।

अर्थ—एक देशमें स्वपर्याय से सद्भाव–अस्तिता विवक्षित कहने की इच्छा हो और अन्य देश में स्वपर दोनों पर्यायों से सत्वासत्व युगपत् असाकेतिक शब्द से विवक्षित हो वह अस्ति

अवक्तव्य नामक पाचवा भंग होता है ऐसे जीव भी चेतनत्वादि पर्याय से अस्ति और शेष पर्यायों मे अवक्तव्य है इति स्यान् अस्ति अवक्तव्य रूप पाचवा भग कहा

तथा एकदेशे परपर्यायैरसद्भावेनार्पितो विशेषतः अन्यैस्तु स्वपरपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्या सत्वासत्वाभ्या युगपदसाकेतिकेन शब्देन वस्तु विवक्षितक्रमोऽस्मन् अवक्तव्यश्च भवति। अक्रमोऽवक्तव्यश्च भवतीत्यर्थः देशे तस्याक्रमत्वात् देशे अवक्तव्यत्वादिति षष्ठो भगः।

अर्थ—एक देशमें परपर्याय मे असद्भाव अर्पित—स्थापित किया जाय और अन्य देश मे स्वपर्याय से अस्तिता और पर पर्याय से नास्तिता को युगपत्—एक समय असाकेतिक शब्द से कहने के लिये इच्छा हो क्योंकि बिना कहे श्रोता को ज्ञान नहीं हो सक्ता इस वास्ते स्यात् पदसे अन्य भागो का अपेक्षा रखते हुवे तथा सत धर्म की समकालता जनाने के लिये स्यात् नास्ति अवक्तव्य यह छट्ठा भग कहा। एवं जीव परपर्याय से नास्ति और स्वपर—उभय पर्याय से अवक्तव्य पूर्ववत् समझ लेना इति स्यात् नास्ति अवक्तव्य रूप छट्ठा भग कहा

तथा एकदेशे स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितः एकस्मिन् देशे परपर्यायैरसद्भावेनार्पितः अन्यस्मिस्तु देशे स्वपरोभय पर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्या युगपदेकेन शब्देनवस्तु विवक्षितः सन् असन् अवक्तव्यश्च भवति इति सप्तमो भङ्ग। एतेन एकस्मिन् वस्तुन्यर्पितानर्पितेन सप्तभंगी उक्ता।

अर्थ—एक देश में स्वपर्याय से अस्तिता अर्पित की जाय और एक देश में परपर्याय की नास्तिता ये दोनों पर्याय सम-काल—एक समय में एक साथ रहे हुवे हैं परन्तु वचने से नहीं कहे जाते इस अपेक्षा से स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य यह सातवा भग कहा यह सप्तभगी अर्पित, अनर्पित अर्थात् आरोप, अनारोप से कही हैं

> तत्र जीव स्वधर्मे ज्ञानादिभिः अस्तित्वेन वर्तमान' तेन स्यात् अस्तिरूपः प्रथम भङ्ग', अत्र स्वधर्मा अस्तिपदगृ-हीताः शेषनास्तित्वान्यो धर्मा अवक्तव्यधर्माश्च स्यात् पदेन सगृहीताः ।

अर्थ—जीव स्वधर्म विषय ज्ञानादि पर्यायों से अस्तिपने है इस वास्ते स्यातस्तिरूप प्रथम भग हुवा यहा स्वधर्म से अस्तिपद का ग्रहण, शेषनास्तित्वादि धर्म और अवक्तव्य धर्म का स्यात पद से ग्रहण होता है

विवेचन—अब सप्तभगी का स्वरूप कहते हैं जो एक द्रव्य में, एक गुण में, एक पर्याय में और एक स्वभाव में सात २ भग सदा परिणत है स्याद्वाद रत्नाकरावतारि का में भी कहा है—" एक स्मिन् जीवादौ अनन्तधर्मापेक्षया सप्तभगीनामानन्त्य " इस वचन से तथा ' अत्थिजीवे ' इत्यादि सूयगडाग सूत्र की गाथा से जान लेना । अब पहिला भग लिखते हैं,—जीव के गुणपर्यायी समुदाय का जो आधार वह जीव का स्वद्रव्य है, ज्ञानादि गुण का अवस्थान असख्यातप्रदेशरूप स्वक्षेत्र है, अगुरु

लघुता-हानिवृद्धि का मान यह स्वकाल है और उत्पादव्यय का भिन्न स्वभाव परिणमन तथा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त-चारित्र, अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तभोग, अनन्तउपभोग, अनन्तवीर्य, अनन्त अव्याबाध, अरूपी, अशरीरी, परमक्षमा, परममार्दव, परमआर्जव, स्वरुपभोगी प्रमुख स्व स्वभाव से अनन्तज्ञेय-ज्ञायकपने जीवद्रव्य अस्ति है। इस तरह जीव का स्वधर्म ज्ञानादि गुण समस्त ज्ञेय ज्ञायकरूप स्वधर्मशक्ति से अनन्त अविभागरूप अर्थात् एकैक पर्याय अविभाग में सब अभिलाप्य अनभिलाप्य स्वभावका ज्ञायकपना है उसको विस्तार से लिखते हैं—मति, श्रुति, अवधि और मन पर्यव प्रत्येकज्ञान के अविभाग पर्याय जुदे जुदे हैं और केवलज्ञानके पर्याय जुदे हैं विशेषावश्यक में गणधरवादके अन्तमें कहा है कि—जो आवर्ण योग्य वस्तु भिन्न है तो उसका आवरण भी भिन्न है उसको क्षयोपशमादि भेदसे परोक्ष अथवा देशासे जाने और सम्पूर्ण आवर्ण के क्षय होनेसे प्रत्यक्ष रूपसे जानते हैं परन्तु केवलज्ञान सर्वभावों का प्रत्यक्षदायक है उसके प्रगट होनेसे दूसरे ज्ञानकी प्रवृत्ति है परन्तु भिन्नपने प्रकाशित नहीं होती, किन्तु केवलज्ञानका ही जान-पना कहाजाता है किसी आचार्य का मत है कि ज्ञानके अविभाग पर्याय सब एक जाति के हैं, उन अविभागों में वर्णादि जानने की शक्ति अनेक प्रकारकी है उसीमेंकी जो शक्ति प्रगट होती है उसके मतिज्ञानादि भिन्न २ नाम हैं और सब आवर्णों के क्षय होनेसे एक केवलज्ञान रहता है छद्मस्थको ज्ञानका भास है इस तरह की व्याख्या भी है।

जीव अपने ज्ञानादि स्वगुण पर्यायासे ज्ञायकत्व, परिच्छेद-कत्व, वेतृत्वादि रूपसे अस्ति है इसतरह सब गुणोंमें स्वधर्म की अस्तिता है और अविभाग पर्याय के समुह की एक प्रवृत्ति को गुण कहते हैं वह स्वकार्य कारण धर्मपने अस्ति है एव छे द्रव्यो में स्वस्वरूपपने अस्तिता है और नास्ति आदि छे भागोंकी सापेक्षता रखनेके लिये स्यात् पद पूर्वक बोलना चाहिये इसलिये स्यात् अस्ति नामक प्रथम भग कहा अस्तिधर्म है वह नास्ति सहित है स्यात् शब्द अस्ति धर्ममें नास्ति आदि धर्मोंकी सत्ता प्रगटकर्ता है

तथा स्वजात्यन्यद्रव्याणा तद्धर्माणा च विजातिपरद्रव्याणा तद्धर्माणा च जीवे सर्वथैव अभावात् नास्तित्व तेन स्यात् नास्तिरूपो द्वितीयो भङ्ग अत्र परधर्माणा नास्तित्व नास्तिपदेन गृहीत शेषा अस्तित्वादयः स्यात् पदेन गृहीता इति ।

अर्थ—स्वजातीय अन्यद्रव्योंका तथा उनमें रहे हुवे धर्मों का और विजातिय परद्रव्योंका तथा उनमें रहे हुए धर्मोंका जीवमें अभाव होनेसे नास्तित्व धर्म हुआ इस कारणसे स्यात् नास्तिरूप दूसरा भग होता है यहा परधर्म की नास्तिता नास्ति-पदसे ग्रहण करके शेष अस्ति आदि धर्मको स्यात् पदसे ग्रहण किया इति द्वितीय भङ्ग

विवेचन—अन्य जो सिद्ध, ससारी जीव हैं उनके गुण-पर्याय और अस्तित्वादि प्रमुख सर्व धर्मोंकी विवक्षित जीव में

नास्तिता है जैसे अग्नी में और उसके कणीयें में दाहकत्व धर्म-तुल्य है परन्तु अग्नि और कणीयेकी दाहकता परापर भिन्न है अर्थात् जो दाहकता अग्निकी है वह कणीयें में नहीं है और कणीयेकी अग्नि में नहीं है इसीतरह एक जीवके ज्ञानादि गुण अन्य दूसरे जीवमें नही हैं शेष चेतनत्व, ज्ञायकत्व कार्य धर्म तुल्य होते हुवे भी सबमें जो गुण है वह अपना २ है एकका गुण दूसरे में नहीं जाता आता इसलिये विजातीय अन्य द्रव्य, गुण, पर्याय और धर्म की विवक्षित जीवमें नास्ति है इसीतरह गुण में भी अन्य द्रव्यकी नास्ति है और पर्याय अविभागमें भी स्वजातीय अविभाग कार्य कारणता की नास्ति है इसीतरह परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावपने की नास्ति रही हुई है उसमें असत्यादि अनन्त धर्मकी सापेक्षता भास करानेके लिये स्यात् पद पूर्वक यह द्वितीय स्यात् अस्तिनामक भग कहा

केपाचिद्धर्माणा वचन अगोचरत्वेन तेन स्यात् अवक्तव्य इति तृतीयोभङ्ग. वक्तव्य धर्मसापेक्षार्थ स्यात्पदग्रहणम्

अर्थ—अब तीसरा भग कहते हैं प्रत्येक वस्तुमें कितनेक धर्म ऐसे हैं जिनका वचनद्वारा उच्चारण नहीं हो सक्ता उसको अवक्तव्य कहते हैं उन सब धर्मों को केवली केवलज्ञानसे जानते हैं तथापि वचनसे कहने के लिये वे भी असमर्थ हैं. ऐसे धर्म की अपेक्षा से वस्तु अवक्तव्य है परन्तु केवल अवक्तव्य कहने से वक्तव्य धर्म की नास्तिता प्रगट होती है और वस्तुमें वक्तव्य धर्म है. इसकी सापेक्षता के लिये स्यात् पद ग्रहण करके स्यात अवक्तव्य नामक तीसरा भग कहा

अत्र अस्तिरयने असख्येयाः नास्तिकथनेप्यसख्येयाः समयाः वस्तुनि, एकसमये अस्ति नास्ति स्वभावौ समस्वर्तमानौ तेन स्यात् अस्ति नास्तिरूपश्चतुर्थो भङ्गः

अर्थ—अब चौथा भग कहते हैं अस्ति शब्दको उच्चार्ण करने के लिये असख्याता समय चाहिये इसी तरह नास्ति शब्दको भी असख्याता समय चाहिये और वस्तुमें अस्ति नास्ति दोनों धर्म एक समय है इन दोनोंका एक साथ ज्ञान करानेके लिये और जो अस्ति है वह नास्ति न हो और नास्ति है वह अस्ति न हो इसकी सापेक्षताके लिये स्यात् पूर्वक स्यात् अस्ति नास्ति नामक चौथा भग कहा

तत्र अस्ति नास्ति भावा सर्वे वक्तव्या एव न अवक्तव्या इति शङ्कानिवारणाय स्यात् अस्ति अवक्तव्य इति पञ्चमो भङ्ग स्यात् नास्ति अवक्तव्य इति षष्ठ अत्र वक्तव्या भावाः स्यात् पदे गृहीता ।

अर्थ—अस्ति नास्ति सर्व भाव वक्तव्य ही है ? किन्तु अवक्तव्य नहीं है ? ऐसी शका निवारण करनेके लिये स्यात् अस्ति अवक्तव्य पाचका भग कहा और स्यात् नास्ति अवक्तव्य छाट्ठ भग कहा। यहा वक्तव्य भाव स्यात् पदसे ग्रहण किया है

अत्र अस्तिभावा वक्तव्यास्तथा अवक्तव्यास्तथा नास्ति भावा वक्तव्या अवक्तव्या एकस्मिन् वस्तुनि, गुणे, पर्याये, एक समये, परिणममाना इति ज्ञापनार्थं स्यात् अस्ति नास्ति

अवक्तव्य इति सप्तमो भङ्गः॥ अत्र वक्तव्या भावास्ते स्यात्-पदेन सगृहीता इति अस्तित्वेन अस्तिधर्मा नास्तित्वेन नास्तिधर्मा युगपदुभयस्वभावत्वेन वक्तुमशक्यत्वात् अवक्तव्यः स्यात्पदे च अस्त्यादीनामेव नित्यानित्याद्यनेकान्त समाहकम्।

अर्थ—अस्ति स्वभाव वक्तव्य तथा अवक्तव्य है और नास्ति स्वभाव भी वक्तव्य तथा अवक्तव्य है इस सब धर्मोंका एक वस्तुमें, एक गुणमें, एक पर्यायमें एक समय परिणमन है इसको जाननेके वास्ते स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य नामक सातवा भग कहा यहाँ वक्तव्यादि भावको स्यात् पदसे ग्रहण किया है अस्तिपनेसे अस्ति धर्म और नास्ति पनेसे नास्तिधर्म दोनों एक समय उभयरूप कहनेके लिये अशक्य होनेसे अवक्तव्य है और स्यात् पद अस्ति तथा नित्यानित्यादि अनेकान्त समाहक है ।

विवेचन—अब सातवा भग कहते हैं अस्ति नास्ति स्वभाव वक्तव्य, अवक्तव्य रूपसे एक समय एक वस्तुमें, एक गुणमें, एक पर्यायमें समकाल अर्थात् एकसाथ परिणमन होते हैं इसको जाननेके लिये स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य यह सातवा भग कहा। अब अस्ति धर्म है वह नास्ति न हो और नास्तिधर्म है वह अस्ति न हो इसीतरह वक्तव्य है वह अवक्तव्य न हो और अवक्तव्य, वक्तव्य न हो ऐसा ज्ञान करानेके लिये स्यात् पद ग्रहण किया है अब अस्ति भाव है वह अस्तिधर्म और नास्ति भाव है वह नास्ति धर्म है तथा दोनों धर्म एक समय उभयरूप कहनेके लिये अशक्य है इसलिये

अवक्तव्य है । स्यात्पद अस्ति, नास्ति, नित्यानित्य प्रमुख अनेकान्त समाहक है जैसे–अस्तिधर्म है वह नित्यरूप है अनित्यरूप है एकरूप है अनेकरूप है भेदरूप है अभेदरूप है इत्यादि अनेकान्त माही है क्योंकि वस्तुके एक गुणमें अस्तिता, नास्तिता, नित्यता, अनित्यता, भेदता, अभेदता, वक्तव्यता, अवक्तव्यता, भव्यता, अभव्यता रूप अनेकान्तपना है इसीको स्याद्वाद कहते हैं इसकी मापेक्षता भास करानेके लिये स्यात् पद कहा है

आत्मामें स्वधर्मकी अस्तिता है और परधर्मकी नास्तिता है स्वगुणका परिणमन अनित्य है और वही गुण रूपसे नित्य है। द्रव्यपिंडरूपसे एक है और गुण, पर्याय रूपसे अनेक है तथा आत्मा कारण कार्यरूपसे प्रतिसमय नवीनता २ को प्राप्त करता है यह भवन धर्म है तथापि मूल धर्मसे नहीं पलटता उसको अभवन धर्म कहते हैं इत्यादि अनेक परिणति युक्त है। इसीतरह षट् द्रव्यके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके हेय उपादेय रूपसे श्रद्धा, भास प्रगट हो वही सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन है इसीसे जीवकी अशुद्धता अर्थात् परकर्ता, परभोक्ता, परग्राहकता दूर होती है इसी साधनसे आत्मा आत्मस्वरूपपने रहता है

स्यात् अस्ति, स्यात्नास्ति, स्यात् अवक्तव्य रूपास्त्रया' सकलादेशा सपूर्ण वस्तुधर्म ग्राहकत्वात्, मूलत अस्ति भावा अस्तित्वेन सन्ति, नास्तित्वेन न सन्ति एव सप्त भगा' एव नित्यत्व सप्तभङ्गी अनित्यत्व सप्तभङ्गी एव सामान्य धर्माणा, विशेष धर्माणा, गुणाना, पर्यायाणां प्रत्येकम् सप्तभङ्गी तद्यथा

अर्थ—स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अवक्तव्य ये तीनो भग वस्तुके सम्पूर्ण धर्मग्राही होनेसे सकलादेशी कहे जाते हैं मुख्यतासे अस्तिभाव अस्तिरूप है नास्तिरूप नहीं है इसीतरह सातोभग समजना. एव नित्यपने सप्तभगी, अनित्यपने सप्तभगी और सामान्य धर्म, विशेष धर्म, गुण, पर्याय प्रत्येक में सप्तभगी कहना।

विवेचन—स्यात्अस्ति, स्यात्नास्ति और स्यात् अवक्तव्य य तीनो भागे सकलादेशी हैं शेष चार भग विकलादेशी कहलाते हैं ये चारों भागे वस्तुके एक देशग्राही हैं तथा अस्ति धर्म मे जो अस्तिता है वह नास्तिपने नहीं है किन्तु नास्तिभाव नास्तिरूप है उस में अस्तिता नहीं है। शका—वस्तु में जो नास्तिपना है उसको अस्तिपने कहते हो तो नास्तिपने में अस्तिताकी ना क्यों कहते हो ? उत्तर—जो नास्तिता है वह अस्तिरूप है और अस्तिध में है वह नास्तिरूप मे नहीं है। इसी तरह नित्यता, अनित्यता, सामान्यधर्म, विशेपधर्म, गुण, पर्यायादि में भी सप्तभगी लगा-लेना जैसे

ज्ञान ज्ञानत्वेन अस्ति दर्शनादिभिः स्वजाति धर्मैः अचेतनादिभिः विजातिधर्मैः नास्ति, एव पञ्चास्तिकेये प्रत्य स्तिकायमनन्ता सप्तभग्यो भवन्ति अस्तित्वाभावे गुणाभावात् पदार्थे शुन्यतापत्तिः नास्तिताभावे कदाचित् परभावत्वेन परिणमनात् सर्वसङ्करतापत्तिः व्यजक योगे सत्ता स्फुरति तथा असत्ताया अपि स्फुरणात् पदार्थानामनियतामतिपत्तिः तत्वार्थे–तद्भावाव्यय नित्यम् ॥

अर्थ—अब गुणकी सप्तभंगी कहते हैं जैसे–ज्ञान गुण है वह ज्ञानगुणरूप से अस्ति है और दर्शनादि स्वजाति एक द्रव्य-व्यापी गुण तथा स्वजातिय भिन्न जीव व्यापी ज्ञानादि गुण और पर द्रव्य में रहा हुवा अचेतनादि धर्मकी नास्तिता है इस तरह पचास्तिकाय के प्रत्येक अस्तिकाय में अनन्त सप्तभंगी प्राप्त होती है स्याद्वाद परिणाम को सप्तभंगी कहते हैं

अगर वस्तु में अस्तित्व धर्म या नास्तित्व धर्म को न माने तो कौनसा दोष उत्पन्न होता है ? वस्तु में अस्तिपना न मानने से गुणपर्याय का अभाव होता है और गुण के अभाव से पदार्थ शून्य भावको प्राप्त होता है। और नास्तित्व धर्म न मानने से किसी समय वस्तु परवस्तुपने अथवा परगुणपने या जीव अजीवपने, अजीव जीवपने प्राप्त हो यह शंकरता दोष उत्पन्न होता है। व्यजक्ता अथात् प्रगटता योग से अस्ति धर्म स्फुरायमान होता है परन्तु जिस धर्मकी सत्ता अस्ति नहीं है वह स्फुरायमान भी नहीं होता और जो नास्तिपना न माने तो असत्तापने स्फुरायमान होता है और जब असत्ता स्फुरायमान होजाय तब द्रव्य अनिश्चयात्मक होजाय इस वास्ते सब भाव अस्ति, नास्तिमयी है अब व्यजक्ता का दृष्टान्त कहते हैं जैसे–नये अर्थात् कोरे कुंभ मे सुगन्धताकी सत्ता है तभी पानी के योग से वासना प्रगट होती है वस्त्रादि म उस धर्मकी सत्ता नहीं है तो उसकी प्रगटता भी नहीं है एव सर्वत्रापि

### न्यायतीर्थ मुनि न्यायविजयजी कृत

## जैनदर्शन से स्याद्वाद.

स्याद्वादका अर्थ है–वस्तुका भिन्न भिन्न दृष्टि–बिंदुओंसे विचार करना, देखना या कहना। एक ही वस्तुमें अमुक अमुक अपेक्षासे भिन्न भिन्न धर्मोंको स्वीकार करनेका नाम 'स्याद्वाद' है। जैसे एक ही पुरुषमें पिता, पुत्र, चचा, भतीजा, मामा, भानेज आदि व्यवहार माना जाता है, वैसे ही एक ही वस्तुमें अनेक धर्म माने जाते हैं। एक ही घटमें नित्यत्व और अनित्यत्व आदि विरुद्ध रूपसे दिखाई देते हुए धर्मोंको अपेक्षा दृष्टिसे स्वीकार करनेका नाम 'स्याद्वाद दर्शन' है।

एक ही पुरुष अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र, अपने पुत्रकी अपेक्षा पिता, अपने भतीजे और भानजेकी अपेक्षा चचा और मामा एव अपने चचा और मामाकी अपेक्षा भतीजा और भानजा होता है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि इस प्रकार परस्पर विरुद्ध दिखाई देनेवाली बातें भी भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे, एक ही मनुष्य में स्थित रहती हैं। इसी तरह नित्यत्व आदि परस्पर विरोधी धर्म भी एक ही घटमें भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे क्यों नहीं माने जा सकते हैं।

पहिले इस बातका विचार करना चाहिए कि 'घट' क्या

पदार्थ है ? हम देखते हैं कि एक ही मिट्टीमेंसे घडा, कूँडा, सिकोरा आदि पदार्थ बनते हैं। घडा फोड दो और उसी मिट्टीसे बने हुए कूँडेको दिखाओ। कोई उसको घडा नहीं कहेगा। क्यों? क्यों मिट्टी तो वही है, परंतु कारण यह है कि उसकी सूरत बदल गई। अब वह घडा नहीं कहा जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि 'घडा' मिट्टीका एक आकार-विशेष है। मगर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि-आकार विशेष मिट्टीसे सर्वथा भिन्न नहीं होता है। आकारमें परिवर्तित मिट्टी ही जब 'घडा' कूँडा आदि नामोंसे व्यवहृत होती है, तब यह कैसे माना जा सकता है कि घडेका आकार और मिट्टी सर्वथा भिन्न है ! इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि घडेका आकार और मिट्टी ये दोनों घडेके स्वरूप हैं। अब यह विचारना चाहिए कि उभय स्वरूपोंमें विनाशी स्वरूप कौनसा है और ध्रुव कौनसा ? यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि घटेका आकार-स्वरूप विनाशी है। क्योंकि घडा फूट जाता है। घडेका दूसरा स्वरूप जो मिट्टी है, वह अविनाशी है। क्यों कि मिट्टीके कई पदार्थ बनते हैं और टूट जाते हैं, परन्तु मिट्टी तो वह ही रहती है। ये बातें अनुभवसिद्ध है।

हम देख गये हैं कि घडेका एक स्वरूप विनाशी है और दूसरा ध्रुव। इससे सहजहीमें यह समझा जा सकता हैं कि विनाशी रूपसे घडा अनित्य है और ध्रुव रूपसे घडा नित्य है। इस तरह एक ही वस्तुमें नित्यता और अनित्यताकी मान्यताको रखनेवाले सिद्धान्त को ' स्याद्वाद ' कहा गया है।

स्याद्वादका क्षेत्र उक्त नित्य और अनित्य इन दोही बातोंमें पर्याप्त नहीं होता है। * सत्त्व और असत्त्व आदि दूसरी, विरुद्ध-रूपमें दिखाइ देनेवाली बातें भी स्याद्वादमें आ जाती हैं। घड़ा आँखोंसे प्रत्यक्ष दिखाई देता है, इससे यह तो अनायास ही सिद्ध हो जाता है कि वह 'सत्' है। मगर न्याय कहता है कि अमुक दृष्टिसे वह 'असत्' भी है।

यह बात खास विचारणीय है कि, प्रत्येक पदार्थ जो 'सत्' कहलाता है किस लिए ? रूप, रस, आकार आदि अपने ही गुणोंसे-अपने ही धर्मोंसे-प्रत्येक पदार्थ 'सत्' होता है। दूसरेके गुणोंसे कोई पदार्थ 'सत्' नहीं हो सकता है। जो बाप कहाता है, वह अपने पुत्रसे, किसी दूसरेके पुत्रसे नहीं। यानी खास पुत्र ही पुरुषको बाप कहता है, दूसरेका पुत्र उसको बाप नहीं कह सकता। इस तरह जैसे स्वपुत्रकी अपेक्षा जो पिता होता है वही पर-पुत्रकी अपेक्षा अपिता होता है, वैसे ही अपने गुणोंसे अपने धर्मोंसे-अपने स्वरूपसे जो पदार्थ 'सत्' है, वही पदार्थ दूसरेके धर्मोंसे-दूसरोंमें रहे हुए गुणोंसे-दूसरोंके स्वरूपसे 'सत्' नहीं हो सकता है। जब 'सत्' नहीं हो सकता है, तब यह बात स्वत सिद्ध हो जाती है कि वह 'असत्' होता है।

इस तरह भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे 'सत्' को 'असत्' कहनेमें विचारशील विद्वानोंको कोई बाधा दिखाई नहीं देगी।

---

* अस्तित्व और नास्तित्व।

'सत्' को भी 'सत्' पनेका जो निषेध किया जाता है, वह ऊपर कहे अनुसार अपनेमें नहीं रही हुई निरोप धर्मकी सत्ताकी अपेक्षासे। जिसमें लेखनशक्ति या वक्तृत्वशक्ति नहीं है, वह कहता है कि–"मैं लेखक नहीं हूँ।" या 'मैं वक्ता नहीं हूँ।" इन शब्दप्रयोगोंमें 'मैं' और साथ ही 'नहीं' का उच्चारण किया गया है, वह ठीक है। कारण, हरेक समझ सकता है कि यद्यपि 'मैं' स्वयं 'सत्' हूँ, तथापि मुझमें लेखन या वक्तृत्वशक्ति नहीं है इसलिए उस शक्तिरूपसे "मैं नहीं हूँ"। इस तरह अनुसंधान करनेसे सर्वत्र एक ही व्यक्तिमें 'सत्त्व' और 'असत्त्व' का स्याद्वाद बराबर समझमें आ जाता है।

स्याद्वादके सिद्धान्तको हम और भी थोड़ा स्पष्ट करेंगे—

सारे पदार्थ उत्पत्ति, स्थिति और विनाश, ऐसे तीन धर्मवाले हैं। उदाहरणार्थ–एक सुवर्णकी कठी लो। उसको तोड़कर डोरा बना डाला। इस बातको हरेक समझ सकता है कि कठी नष्ट हुई और डोरा उत्पन्न हुआ। मगर यह नहीं कहा जा सकता है कि, कठी सर्वथा नष्ट ही हो गई है और डोरा बिलकुल ही नवीन उत्पन्न हुआ है। डोरेका बिलकुल ही नवीन उत्पन्न होना तो उस समय माना जा सकता है, जब कि उसमें कठीकी कोई चीज़ आई ही न हो। मगर जब कि कठीका सारा सुवर्ण डोरेमें आ गया है, कठीका आकारमात्र ही बदला है, तब यह नहीं कहा जा सकता है कि डोरा बिलकुल नया उत्पन्न हुआ है। इसी तरह

१ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्।"–तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वाति वाचक।

यह मानना होगा कि कठी भी सर्वथा नष्ट नहीं हुई है। कठीका सर्वथा नष्ट होना तब ही माना जा सकता है जब कि कठीकी कोई चीज बाकी न बची हो। परन्तु जब कठीका सारा सुवर्ण ही डोरेमे आ गया है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि कठी सर्वथा नष्ट हो गई है। इसमे यह स्पष्ट हो गया कि,—कठीका नाश उसके आकारका नाश मात्र है और डोरेकी उत्पत्ति उसके आकारकी उत्पत्ति मात्र है और कठी और डोरेका सुवर्ण एक ही है। कठी और डोरा एक ही सुवर्णके आकारभेदके सिवा दूसरा कुछ नहीं है।

इस उदाहरणसे यह भली प्रकार समझमें आ गया कि कठीको तोड कर डोरा बनानेमें कठीके आकारका नाश, डोरेके आकारकी उत्पत्ति और सुवर्णकी स्थिति इस प्रकार उत्पाद, नाश और ध्रौव्य, ( स्थिति ) तीनो धर्म बराबर हैं। इसी तरह घडेको फोडकर कूँडा बनाये हुए उदाहरणको भी समझ लेना चाहिए। घर जब गिर जाता है तब जिन पदार्थोंसे घर बना होता है वे चीजें कभी सर्वथा विलीन नहीं होती हैं। ये सब चीजें स्थूल रूपसे अथवा अन्तत परमाणु रूपसे तो अवश्यमेव जगत्में रहती ही हैं। अत तत्त्वदृष्टिसे यह कहना अघटित है कि घर सर्वथा नष्ट हो गया है। जब कोई स्थूल वस्तु नष्ट हो जाती है तब उसके परमाणु दूसरी वस्तुके साथ मिलकर नवीन परिवर्तन खडा करते हैं, ससारके पदार्थ ससारही में इधर उधर विचरण करते हैं

जिससे नवीन नवीन रूपोंका प्रादुर्भाव होता है। दीपक बुझ गया, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वह सर्वथा नष्ट हो गया है। दीपकका परमाणु–समूह वैसाका वैसा ही मौजूद है। जिस परमाणु सघातसे दीपक उत्पन्न हुआ था, वही परमाणु-सघात, दूसरा रूप पा जानेसे, दीपकरूपमें न दीखकर अधकार—रूपमें दीखता है, अन्धकार रूपमें उसका अनुभव होता है। सूर्यकी किरणोंसे पानीको सूखा हुआ देखकर, यह नहीं समझ लेना चाहिए कि पानीका अत्यत अभाव हो गया है। पानी, चाहे किसी रूपमें क्यों न हो, बरावर स्थित है। यह हो सकता है कि, किसी वस्तुका स्थूलरूप नष्ट हो जाने पर उसका सूक्ष्मरूप दिखाई न दे मगर यह नहीं हो सकता कि उसका सर्वथा अभाव ही हो जाय यह सिद्धान्त अटल है कि न कोई मूल वस्तु नवीन उत्पन्न होती है और न किसी मूल वस्तुका सवथा नाश ही होता है। दूधसे बना हुआ दही, नवीन उत्पन्न नहीं हुआ। यह दूधहीका परिणाम है। इस बातको सब जानते हैं कि दुग्धरूपसे नष्ट होकर दही रूपमें आनेवाला पदार्थ भी दुग्धहीकी तरह 'गोरस' कहलाता है। अत एव गोरसका त्यागी दुग्ध और दही दोनों चीजें नहीं खा सकता है। इससे दूध और दहीमें जो साम्य है वह अच्छी तरह अनुभवमें आ सकता है। * इसी प्रकार सब जगह समझना चाहिए कि,

---

* पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रत ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम्' ॥

—शास्त्रवार्तासमुच्चय हरिभद्रसूरि ।

मूलतत्त्व सदा स्थिर रहते हैं, और इसमें जो अनेक परिवर्तन होते रहते हैं, यानी पूर्वपरिणामका नाश और नवीन परिणामका प्रादुर्भाव होता रहता है, वह विनाश और उत्पाद है इसमे सारे×पदार्थ उत्पत्ति विनाश और स्थिति (ध्रौव्य) स्वभाववाले प्रमाणित होते हैं। जिसका उत्पाद, विनाश होता है उसको जैनशास्त्र 'पर्याय' कहते है। जो मूल वस्तु सदा स्थायी है, वह 'द्रव्य' के नामसे पुकारी जाती है। द्रव्यसे (मूल वस्तुरूपसे) प्रत्येक पदार्थ नित्य है, और पर्यायसे अनित्य है। इस तरह प्रत्येक पदार्थको न एकान्त नित्य और न एकान्त अनित्य, बल्के नित्यानित्यरूपसे मानना ही 'स्याद्वाद' है।

इसके सिवा एक वस्तुके प्रति 'अस्ति' 'नास्ति' का सबध भी—जैसा कि ऊपर कहा गया है—ध्यानमें रखना चाहिए। घट (प्रत्येक पदार्थ) अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे 'सत्' है और दूसरेके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे 'असत्' है। जैसे—वर्षाऋतुमें, काशीमें, जो मिट्टीका काला घडा बना है वह द्रव्यसे मिट्टीका है, मृत्तिकारूप है, जलादिरूप नहीं है, क्षेत्रसे बनारसका है, दूसरे क्षेत्रोंका नहीं है, कालसे वर्षा—ऋतुका है दूसरी ऋतुओंका

---

× "उत्पन्न दधिभावेन नष्ट दुग्धतया पय ।
गोरसत्वात् स्थिर जानन् स्याद्वादद्विड् जनोऽपि क ? ॥"

—अध्यात्मोपनिषद्, यशोविजयजी।

+ विज्ञानशास्त्र भी कहता है कि, मूलप्रकृति ध्रुव–स्थिर है और उससे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ उसके रूपान्तर–परिणामान्तर हैं। इस तरह उत्पाद, विनाश और ध्रौव्यके जैनसिद्धान्तका, विज्ञान (Scınce) भी पूर्णतया समर्थन करता है।

नहीं है और भावसे पाले पर्यायवाला है अन्य पर्याय नहीं है। संक्षेपमें यह है, कि प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूपहीसे 'अस्ति' कही जा सकती है दूसरेके स्वरूपसे नहीं। जब वस्तु दूसरेके स्वरूपसे 'अस्ति' नहीं कहलाती है तब उसके विपरीत कहलायगी, यानी 'नास्ति'।

स्याद्वादका एक उदाहरण और देंगे। वस्तुमात्रमें सामान्य और विशेष ऐसे दो धर्म होते हैं। सौ 'घडे' होते हैं उनमें 'घडा' घडा, ऐसी एक प्रकारकी जो बुद्धि उत्पन्न होती है, वह यह बताती है कि तमाम घडोंमें सामान्यधर्म-एकरूपता है मगर लोग उनमेंसे अपने भिन्न भिन्न घडे जब पहिचान कर उठा लेते हैं तब यह मालूम होता है कि प्रत्येक घडेमें कुछ न कुछ पहिचानका चिन्ह है, यानी भिन्नता है। यह भिन्नता ही उनका विशेष-धर्म है। इस तरह सारे पदार्थोंमें सामान्य और विशेष धर्म हैं। ये दोनों धर्म सापेक्ष हैं, वस्तुसे अभिन्न हैं। अतः प्रत्येक वस्तुको सामान्य और विशेष धर्मवाली समझना ही स्याद्वाददर्शन है×।

स्याद्वादके संबंधमें कुछ लोग कहते हैं कि, यह संशयवाद है निश्चयवाद नहीं। एक पदार्थको नित्य भी समझना और अनित्य भी, अथवा एक ही वस्तुका 'सत्' भी मानना और 'असत्' भी मानना संशयवाद नहीं है तो और क्या है? मगर विचारक

* स्याद्वादके विषयमें तार्किकोंकी तर्कणाएँ आतिप्रबल है। **हरिभद्रसूरि** 'अनेकान्तजयपताका' में इस विषयका मौटनाके साथ विवचन किया है।

×गुजरातके प्रसिद्ध विद्वान् प्रा० **आनंदशंकर** ध्रुवने अपने एक व्याख्यान

लोगोंको यह कथन–यह प्रश्न अयुक्त जान पडता है। जो सशयके स्वरूपको अच्छी तरह समझते हैं, वे स्याद्वादको सशयवाद कहनेका कभी साहस नहीं करते। कई वार रातमें, काली रस्सीको देखकर सदेह होता है कि–" यह सर्प है या रस्सी ? " दूरसे वृक्षके ठूंठको देखकर सदेह होता है कि–" यह मनुष्य है या वृक्ष ? " ऐसी सशयकी अनेक बातें है, जिनका हम कई वार अनुभव करते हैं। इस सशयमें सर्प और रस्सी अथवा वृक्ष और मनुष्य दोनोंमेंसे एक भी वस्तु निश्चित नहीं होती है। पदार्थका ठीक तरहसे समझमें न आना ही सशय है। क्या कोई स्याद्वादमें इस तरहका सशय बता सकता है ? स्याद्वाद कहता है कि, एक ही वस्तुका भिन्न भिन्न अपेक्षासे, अनेक तरहसे

---

स्याद्वादके सबधमें कहा था —' स्याद्वादका सिद्धान्त अनेक सिद्धान्तोंको देखकर उनका समन्वय करनेके लिए प्रकट किया गया है। स्याद्वाद हमारे सामने एकी भावका दृष्टिबिन्दु उपस्थित करता है। शकराचार्यने स्याद्वादके ऊपर जो आक्षेप किया है उसका, मूल रहस्यके साथ कोई सबध नहीं है। यह निश्चय है कि विविध दृष्टिबिन्दुओं द्वारा निरीक्षण किये बिना किसी वस्तुका सपूर्ण स्वरूप समझमें नहीं आ सकता है। इस लिए स्याद्वाद उपयोगी और सार्थक है। महावीरके सिद्धान्तोंमें बताये गये स्याद्वादको कई सशयवाद बताते हैं। मगर मैं यह बात नहीं मानता। स्याद्वाद सशयवाद नहीं है। यह हमको एक मार्ग बताता है–यह हमें सिखाता है कि विश्वका अवलोकन किस तरह करना चाहिए।

काशीके स्वर्गीय महामहोपाध्याय **राममिश्रशास्त्रीने** स्याद्वादके लिए अपना जो उत्तम अभिप्राय दिया था उसके लिए उनका 'सुजन–सम्मेलन' शीर्षक व्याख्यान देखना चाहिए।

देखो । एक ही वस्तु अमुक अपेक्षासे 'अस्ति' है यह निश्चित बात है, और अमुक अपेक्षासे 'नास्ति' है, यह भी बात निश्चित है । इसी तरह, एक वस्तु अमुक दृष्टिसे नित्यस्वरूप भी निश्चित है और अमुक दृष्टिसे अनित्यस्वरूप भी निश्चित है। इस तरह एक ही पदार्थको परस्परमें विरुद्ध* मालूम होनेवाले दो धर्मोंसहित होनेका जो निश्चय करना है, वही स्याद्वाद है। इस स्याद्वादका 'संशयवाद' कहना मानो प्रकाशको अंधकार बताना है ।

"स्याद् अस्त्येव घट" स्याद् नास्त्येव घट ।"

"स्याद् नित्य एव घट" स्याद् अनित्य एव घट ।"

स्याद्वादके 'एव'कार युक्त इन वाक्योंमें–अमुक× अपेक्षासे घट 'सत्' ही है और अमुक अपेक्षासे घट 'असत्' ही है। अमुक अपेक्षासे घट 'नित्य' ही है और अमुक अपेक्षासे घट 'अनित्य' ही है–इस प्रकार निश्चयात्मक अर्थ समझना चाहिए । 'स्यात्' शब्दका अर्थ 'कदाचित्' 'शायद' या इसी प्रकारके दूसरे संशयात्मक शब्दोंसे नहीं करना चाहिए । निश्चयवादमें संशयात्मक

---

* वास्तवमें विरुद्ध नहीं ।

× 'स्यात्' शब्दका अर्थ होता है–अमुक अपेक्षासे । ( सप्तभङ्गीमें आगे इसका विशेष विवेचन है ) विशाल दृष्टिसे दर्शनशास्त्रोंका अवलोकन करनेवाले भली प्रकारसे समझ सकते हैं कि प्रत्येक दर्शनकारको स्याद्वाद सिद्धान्त स्वीकारना पड़ा है । सत्व रज और तम इन तीन परस्पर

शब्दका क्या काम ? घटको घटरूपसे समझना जितना यथार्थ है–निश्चयरूप है, उतना ही यथार्थ–निश्चयरूप, घटको अमुक अमुक दृष्टिसे अनित्य और नित्य दोनो रूपसे, समझना है । इससे स्याद्वाद अव्यवस्थित या अस्थिर सिद्धान्त भी नहीं कहा जा सकता है ।

अब वस्तुके प्रत्येक धर्म में स्याद्वाद की विवेचना, जिसको 'सप्तभङ्गी' कहते हैं, की जाती है ।

---

विरुद्ध गुणवाली प्रकृतिको माननेवाला सांख्यदर्शन, × पृथ्वीको परमाणुरूपसे नित्य और स्थूलरूपसे अनित्य माननेवाला तथा द्रव्यत्व, पृथ्वीत्व आदि धर्मोंको सामान्य और विशेषरूपसे स्वीकार करनेवाला × नैयायिक वैशेषिक दर्शन अनेक वर्णयुक्त वस्तुके अनेकवर्णाकारवाले एक चित्रज्ञानको, जिसमें अनेक विरुद्ध वर्ण प्रतिभासित होते हैं– माननेवाला* बौद्धदर्शन प्रमाता,

---

* "इच्छन् प्रधान सत्त्वाद्यैर्विरुद्धैर्गुम्फितं गुणैः ।
सांख्य संख्यावतां मुख्यो नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्" ॥

—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र ।

+ 'चित्रमेकमनेकं च रूपं प्रामाणिकं वदन् ।
योगो वैशेषिको वापि नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्' ॥

—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र ।

भावार्थ—नैयायिक और वैशेषिक एक चित्र रूप मानते हैं । जिसमें अनेक वर्ण होते हैं उसे चित्र–रूप कहते हैं । इसको एकरूप और अनेकरूप कहना यह स्याद्वादकी सीमा है ।

§ "विज्ञानस्यैकमाकारं नानाऽऽकारकरम्बितम् ।
इच्छंस्तथागतः प्राज्ञो नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्" ॥

—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र ।

## सप्तभंगी ।

ऊपर कहा जा चुका है कि 'स्याद्वाद' भिन्न भिन्न अपेक्षासे अस्तित्व–नास्तित्व, नित्यत्व–अनित्यत्व आदि अनेक धर्मोंका एक ही वस्तुमें होना बताता है । इससे यह समझमें आ जाता है कि, वस्तुस्वरूप जिस प्रकारका हो, उसी रीतिसे उसकी विवेचना करनी चाहिए । वस्तुस्वरूपकी जिज्ञासावाले किसीने पूछा कि–" घड़ा क्या अनित्य है ? " उत्तरदाता यदि इसका यह उत्तर

---

प्रमिति और प्रमेय आकारवाले एक ज्ञानका, जो उन तीन पदार्थोंका प्रतिभासरूप है, मंजूर करनेवाला मीमांसक दर्शन और अन्य प्रकार से दूसरे* भी स्याद्वादको अर्थत स्वीकार करते हैं । अन्तमें चार्वाकको भी स्याद्वादकी आज्ञामे चलना पड़ा है । जैसे—पृथ्वी जल तेज और वायु इन चार तत्त्वोंके सिवा पाँचवा तत्त्व चार्वाक नहीं मानता । इसलिए चार तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाले चैतन्यको चार्वाक चार तत्त्वोंमे अलग नहीं मान सकता है ।

---

* जातिव्यक्त्यात्मकं वस्तु वदन्ननुभवोचितम् ।
भट्टो वापि मुरारिर्वा नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् " ॥
'अबद्धं परमार्थेन बद्धं च व्यवहारतः ।
ब्रुवाणो ब्रह्मवेदान्ती नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् " ॥
'ब्रुवाणा भिन्नभिन्नार्थान् नयभेदव्यपेक्षया ।
प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदाः स्याद्वादं सार्वतान्त्रिकम् " ॥

—यशोविजयजीकृत अध्यात्मोपनिषद् ।

भावार्थ— जाति और व्यक्ति इन दो रूपोंसे वस्तुको बतानेवाले **भट्ट** और **मुरारि** स्याद्वादकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं । " 'आत्माको व्यव

टे कि घड़ा अनित्य ही है, तो उसका यह उत्तर या तो अधूरा है या अयथार्थ है। यदि यह उत्तर अमुक दृष्टिबिन्दुसे कहा गया है तो वह अधूरा है। क्योंकि उसमें ऐसा कोई शब्द नहीं है जिससे यह समझमें आवे कि यह कथन अमुक अपेक्षासे कहा गया है। अत वह उत्तर पूर्ण होनेके लिए किसी अन्य शब्दकी अपेक्षा रखता है। अगर वह सपूर्ण दृष्टिबिन्दुओंके विचारका

---

द्वारसे बद्ध और परमार्थसे अबद्ध माननेवाले ब्रह्मवादी स्याद्वादका तिरस्कार नहीं कर सकते हैं।" "भिन्न भिन्न नयोंकी विवक्षासे भिन्न भिन्न अर्थोंका प्रतिपादन करनेवाले वेद सवतन्त्रसिद्ध स्याद्वादको धिक्कार नहीं दे सकते हैं। चार्वाक यह भी जानता है कि चैतन्यको पृथिव्यादिप्रत्येकतत्त्वरूप माना जाय तो घटादि पदार्थोंके चेतन बन जानेका दोष आ जाता है। अतएव चार्वाकका यह कथन है या चार्वाकको यह कहना चाहिए कि—चैतन्य पृथिव्यादि अनेक तत्त्वरूप है। इस एक चैतन्यको अनेकवस्तुरूप-अनेकतत्त्वात्मक मानना × यह स्याद्वादहीकी मुद्रा है।

---

× यह ध्यानमें रखना चाहिए कि इस तरह माननेमें भी आत्माकी गरज पूरी नहीं होती है। और इसलिए आत्मसिद्धिके ग्रंथ देखने चाहिएँ। स्याद्वादके सबधमें चार्वाककी सम्मति लेनी चाहिए या नहीं, इस विषयमें हेमचन्द्राचार्य वीतरागस्तोत्रमें लिखते हैं कि,—

" सम्मतिर्विमतिर्वापि चार्वाकस्य न मृग्यते।
परलोकाऽऽत्ममोक्षेषु यस्य मुह्यति शेमुषी" ॥

भावार्थ—स्याद्वादके सबधमें चार्वाककी, जिसकी बुद्धि परलोक, आत्मा और मोक्षके संबधमें मूढ हो गई है, सम्मति या विमति (पक्षदगी या नापसदगी) देखनेकी जरूरत नहीं है।

परिणाम है तो अयथार्थ है। क्योंकि घड़ा (प्रत्येक पदार्थ) सपूर्ण दृष्टिबिन्दुओंसे विचार करने पर अनित्यके साथ ही नित्य भी प्रमाणित होता है। इससे विचारशील समझ सकते हैं कि—वस्तुका कोई धर्म बताना हो तब इस तरह बताना चाहिए कि जिससे उसके प्रतिपक्षी धर्मका उसमेंसे लोप न हो जाय। अर्थात् किसी भी वस्तुको नित्य बताते समय, उस कथनमें कोई ऐसा शब्द भी जरूर आना चाहिए कि जिससे उस वस्तुके अदर रहे हुए अनित्यत्व धर्मका अभाव मालूम न हो। इसी तरह किसी वस्तुको अनित्य बतानेमें भी ऐसी शब्द अदर रखना चाहिए कि जिससे उस वस्तुगत नित्यत्वका अभाव सूचित न हो*। सस्कृत भाषामें ऐसा शब्द 'स्यात्' है। 'स्यात्' शब्दका अर्थ होता है 'अमुक अपेक्षासे।' 'स्यात्' शब्द अथवा इसीका अर्थवाची 'कथचित्' शब्द या 'अमुक अपेक्षासे' वाक्य जोडकर+ 'स्यादनित्य एव घट'—"घट अमुक अपेक्षासे अनित्य ही है" इस तरह विवेचन करनेसे, घटमें अमुक अन्य अपेक्षासे जो नित्यत्वधर्म रहा हुआ है, उसमें बाधा नहीं पहुचती है।

* इसी तरह 'अस्तित्व' आदि धर्मोंमें भी समझ लेना चाहिए।

+ 'स्यात्' शब्द या उसीका अर्थवाची दूसरा शब्द जोड विना भी वचन-व्यवहार होता है मगर व्युत्पन्न पुरुषको सर्वत्र अनेकान्त-दृष्टिका अनुसधान रहा करता है।

इससे यह समझमें आ जाता है कि वस्तुस्वरूपके अनुसार शब्दोंका प्रयोग कैसे करना चाहिए। जैनशास्त्रकार कहते हैं कि वस्तुके प्रत्येक धर्मके विधान और निषेधसे सबध रखनेवाले शब्द प्रयोग सात प्रकारके हैं। उदाहरणार्थ हम 'घट को' लेकर इसके अनित्य धर्मका विचार करेंगे।

प्रथम शब्दप्रयोग—"यह निश्चित है कि घट अनित्य है। मगर वह अमुक अपेक्षासे।" इस वाक्यसे अमुक दृष्टिसे घटमें मुख्यतया अनित्यधर्मका विधान होता है।

दुसरा शब्दप्रयोग—"यह निःसन्देह है कि घट अनित्य धर्मरहित है, मगर अमुक अपेक्षासे।" इस वाक्यद्वारा घटमें अमुक अपेक्षासे, अनित्यधर्मका मुख्यतया निषेध किया गया है।

तीसरा शब्दप्रयोग—किसीने पूछा कि—"घट क्या अनित्य और नित्य दोनों धर्मवाला है?" उसके उत्तरमें कहना कि "हा, घट अमुक अपेक्षासे, अवश्यमेव नित्य और अनित्य है।' यह तीसरा वचन-प्रकार है। इस वाक्यसे मुख्यतया अनित्य धर्मका विधान और उसका निषेध, क्रमश किया जाता है।

चतुर्थ शब्दप्रयोग—" घट किसी अपेक्षासे अवक्तव्य है।" घट अनित्य और नित्य दोनों तरहसे क्रमशः बताया जा सकता है, जैसा कि तीसरे शब्दप्रयोगमें कहा गया है। मगर यदि क्रम विना–युगपत् ( एक ही साथ ) घटको अनित्य और

नित्य बताना हो तो, उसके लिए जैनशास्त्रकारोंने, 'अनित्य' 'नित्य' या दूसरा कोई शब्द उपयोगमें नहीं आ सकता इस लिए 'अवक्तव्य' शब्दका व्यवहार किया है। यह है भी ठीक। घट जैसे अनित्य रूपसे अनुभवमें आता है उसी तरह नित्य रूपसे भी अनुभवमें आता है। इससे घट जैसे केवल अनित्य रूपमें नहीं ठहरता वैसे ही केवल नित्य रूपमें भी घटित नहीं होता है बल्के यह नित्यानित्यरूप विलक्षण जातिवाला ठहरता है। ऐसी हालतमें यदि यथार्थ रूपमें नित्य और अनित्य दोनों क्रमश नहीं किन्तु एक ही साथ–बताना हो तो शास्त्रकार कहते हैं कि इस तरह बतानेके लिए कोइ शब्द नहीं है।"* अत घट अवक्तव्य है।

---

* शब्द एक भी एसा नहीं है कि जो नित्य और अनित्य दोनों धर्मोंको एक ही साथमें, मुख्यतया प्रतिपादन कर सके। इस प्रकारसे प्रतिपादन करनेकी शब्दोंमें शक्ति नहीं है। 'नित्यानित्य' यह समासवाक्य भी क्रमहीसे नित्य और अनित्य धर्मोंका प्रतिपादन करता है। एक साथ नहीं। **सकृदुच्चरितं पदं सकृदेवार्थं गमयति' अर्थात् एक पदमेकदैक धर्मावच्छिन्नमेवार्थं बोधयति**" इस न्यायसे, 'एक शब्द, एकबार एक ही धर्मको–एक ही धर्मसे युक्त अर्थको प्रकट करता है" ऐसा अर्थ निकलता है। और इससे यह समझना चाहिए कि–सूर्य और चन्द्र इन दोनोंका वाचक पुष्पदन्त शब्द (ऐसे ही अनेक–अर्थ वाले दूसरे शब्द भी) सूर्य और चन्द्रको क्रमश बोध कराता है, एक साथ नहीं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यदि अनित्य–नित्य धर्मोंको एक साथ बतलानेके लिए कोई नवीन सांकेतिक शब्द गढ़ा जायगा तो उससे भी काम नहीं चलेगा।

यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि एक ही साथमें, मुख्यतासे

चार वचन-प्रकार बताये गये। उनमें मूल तो प्रारभके दो ही हैं। पिछले दो वचन-प्रकार प्रारभके दो वचन-प्रकारके सयोगसे उत्पन्न हुए हैं। "कथचित्-अमुक अपेक्षासे घट अनित्य ही है।" "कथचित्-अमुक अपेक्षासे घट नित्य ही है।" ये प्रारभके दो वाक्य जो अर्थ बताते हैं वही अर्थ तीसरा वचन-प्रकार क्रमश बताता है, और उसी अर्थको चौथा वाक्य युगपत्-एक साथ बताता है। इस चौथे वाक्य पर विचार करनेसे यह समझमें आ सकता है कि, घट किसी अपेक्षासे अवक्तव्य भी है। अर्थात् किसी अपेक्षासे घटमें 'अवक्तव्य' धर्म भी है, परन्तु घटको कभी एकान्त अवक्तव्य नहीं मानना चाहिए। यदि ऐसा मानेंगे तो घट जो अमुक अपेक्षासे अनित्य और अमुक अपेक्षासे नित्य रूपसे अनुभवमें आता है, उसमें बाधा आ जायगी। अतएव उपरके चारो वचन-प्रयोगोंको 'स्यात्' शब्दसे युक्त, अर्थात् कथचित्-अमुक अपेक्षासे, समझना चाहिए।

इन चार वचनप्रकारोंसे अन्य तीन वचन-प्रयोग भी उत्पन्न किये जा सकते हैं।

पाचवा वचनप्रकार--"अमुक अपेक्षासे घट अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

---

नहीं कहे जा सकें ऐसे अनित्यत्व-नित्यत्व धर्मोंको 'अवक्तव्य' शब्दसे भी कथन नहीं हो सकता है। किन्तु वे, धर्म मुख्यतया एक ही साथ नहीं कहे जा सकते है, इसलिए वस्तुमें 'अवक्तव्य' नामका धर्म प्राप्त होता है, कि जो 'अवक्तव्य' धर्म 'अवक्तव्य' शब्दसे कहा जाता है।

छठा वचन-प्रकार—" अमुक अपेक्षासे घट नित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सातवा वचन-प्रकार—" अमुक अपेक्षासे घट नित्य, अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सामान्यतया, घटका तीन तरहसे-नित्य, अनित्य और अवक्तव्यरूपसे-विचार किया जा चुका है। इन तीन वचनप्रकारोंको उक्त चार वचन-प्रकारोंके साथ मिला देनेसे सात वचन प्रकार होते हैं। इन सात वचन-प्रकारोंको जैन 'सप्तभंगी' कहते हैं। 'सप्त' यानी सात, और 'भंग' यानी वचनप्रकार। अर्थात् सात वचन-प्रकारके समूहको सप्तभंगी कहते हैं। इन सातों वचन-प्रयोगोंको भिन्न भिन्न अपेक्षासे-भिन्न भिन्न दृष्टिसे समझना चाहिये। किसी भी वचनप्रकारको एकान्त दृष्टिसे नहीं मानना चाहिए। यह बात तो सरलतासे समझमें आ सकती है कि, यदि एक वचन-प्रकारको एकान्तदृष्टिसे मानेंगे तो दूसरे वचनप्रकार असत्य हो जायँगे *।

---

* 'सर्वत्रोऽयं ध्वनिर्विधिप्रतिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधान सप्तभङ्गीमनुगच्छति।'

एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशाद् अविरोधेन व्यस्तयो समस्तयोश्च विधिनिषेधयो कल्पनया स्यात्काराङ्कित सप्तधा वाक्प्रयोग सप्तभङ्गी।'

" स्यादस्त्येव सर्वम् इति विधिकल्पनया प्रथमो भङ्ग।"

" स्याद् नास्त्येव सर्वम्, इति निषेधकल्पनया द्वितीय।"

स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव, इति क्रमतो विधिनिषेधकल्पनया तृतीय।"

यह सप्तभंगी ( सात वचनप्रयोग ) दो भागोंमें विभक्त की जाती है । एकको कहते हैं 'सकलादेश' और दूसरेको 'विकलादेश'। "अमुक अपेक्षासे घट अनित्य ही है।" इस वाक्यसे अनित्य धर्मके साथ रहते हुए घटके दूसरे धर्मोंका बोध करानेका कार्य 'सकलादेश' करता है। 'सकल' यानी तमाम धर्मोंको 'आदेश' यानी कहनेवाला। यह 'प्रमाणवाक्य' भी कहा जाता है। क्योंकि प्रमाण वस्तुके तमाम धर्मोंको विषय करनेवाला माना जाता है। "अमुक अपेक्षासे घट अनित्य ही है।" इस वाक्यसे घटके केवल 'अनित्य' धर्मको बतानेका कार्य 'विकलादेश' का है। 'विकल' यानी अपूर्ण। अर्थात् अमुक वस्तुधर्मको 'आदेश' यानी कहनेवाला 'विकलादेश' है। विकलादेश 'नय'–वाक्य माना गया है। 'नय' प्रमाणका अंश है। प्रमाण सम्पूर्ण वस्तुको ग्रहण करता है, और नय उसके अंशको।

इस बातको तो हरेक समझता है कि, शब्द या वाक्यका कार्य अर्थबोध करानेका होता है। वस्तुके सम्पूर्ण ज्ञानको 'प्रमाण'

---

"स्याद्वक्तव्यमेव, इति युगपद्विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थ ।"

'स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेव इति विधिकल्पनया युगपद् विधिनिषेधकल्पनया च पञ्चम "।

"स्याद् नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव इति निषेधकल्पनया युगपत् विधिनिषेधकल्पनया च षष्ट ।'

"स्यादस्त्येव स्याद् नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव, इति क्रमतो विधिनिषेध कल्पनया युगपत विधिनिषेधकल्पनयो च सप्तम ।"

——प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार।

कहते हैं और उस ज्ञानको प्रकाशित करनेवाला वाक्य ' प्रमाण-वाक्य ' कहलाता है। वस्तुके अमुक अंशके ज्ञानको ' नय ' कहते हैं और उस अमुक अंशके ज्ञानको प्रकाशित करनेवाला वाक्य ' नयवाक्य ' कहलाता है। इन प्रमाणवाक्यों और नयवाक्योंको सात विभागोंमें बांटनेहीका नाम ' सप्तभंगी ' है*

* यह विषय अत्यन्त गहन है विस्तृत है । 'सप्तभंगीतरंगीणी' नामा जैन तर्कग्रंथमें इस विषयका प्रतिपादन किया गया है। 'सम्मतिप्रकरण' आदि जैन न्यायशास्त्रोंमें इस विषयका बहुत गंभीरतासे विचार किया गया है।

ले०

( अनुवादक )

## "नित्यत्वादि स्वभावमाह"

### "तत्त्वार्थे–तद्भावाव्ययं नित्यम्"

तत्वार्थसूत्रसे नित्य स्वभाव कहते हैं वस्तुमें जिस धर्मका पलटन स्वभाव नहीं है अर्थात् यथार्थ रूपसे रहे उसको नित्य स्वभाव कहते हैं नित्य स्वभावके दो भेद हैं यथा—

एका अप्रच्युति नित्यता द्वितीया पार पर्य नित्यता ॥ तथा द्रव्याणां ऊर्ध्वप्रचय तिर्यग्प्रचयत्वेन तदेव द्रव्यमिति ध्रुवत्वेन नित्यस्वभावः नवनवपर्यायपरिणमनादिभिः उत्पत्तिव्ययरूपो नित्यस्वभाव उत्पत्तिव्ययस्वरूपमनित्यम् ।

अर्थ —एक प्रच्युतिनित्यता और दूसरी पारपर्य नित्यता जो द्रव्य उर्ध्वप्रचय, तिर्यग् प्रचयस्वरूपमे स्वद्रव्यपने ध्रुव हो। उसको अप्रच्युति नित्यस्वभाव कहते हैं। नवनवा पर्याय परिणमनादि उत्पत्ति व्ययरूप नित्य स्वभाव है तथा उत्पत्ति विनास स्वरूप अनित्य स्वभाव है

विवेचन—नित्यस्वभायके दो भेद है (१) अप्रच्युति नित्यता (२) पारंपर्य नित्यता अप्रच्युति नित्यता उसको कहते हैं जो द्रव्य उर्ध्वप्रचय, तिर्यग्प्रचयपने परिणत होते हुवे भी यह द्रव्यवही है ऐसी ध्रुवतारूप ज्ञान हो अर्थात् तीनों कालमें स्वस्व-

रूपपने रहे याने मूलस्वभावको न पलटे यह अप्रच्युति नित्यता है। जो पहले समय द्रव्यकी परिणती थी वह दूसरे समय नये पर्यायके उत्पन्न होनेसे और पूर्व पर्यायके व्ययसे सब पर्यायोंका परिवर्तन होनेपर भी यह द्रव्यवही है ऐसा जो ध्रुवात्मक ज्ञान हो उसको उर्ध्वप्रचय कहते हैं यह उर्ध्व समयग्राही है।

तथा—सब जीव अनन्त है और जीवत्व सत्तासे सब तुल्य है तथापि भिन्न जीव सत्तारूप ज्ञानको तिर्यग् प्रचय कहते हैं। कारणसे कार्य उत्पन्न हो यह नित्य स्वभावका धर्म है तथा जिस कारणसे जो कार्य उत्पन्न हुवा फिर दूसरे कारणसे दूसरा कार्य इस तरह पूर्वापर नये नये कार्यके उत्पन्न होनेपर भी जीव वही है ऐसा जो ज्ञान हो और परपरा रूप सतति चलती रहे उसको पारपर नित्यता कहते हैं जैसे प्रथम शरीरके कारणसे राग था वह राग धन वस्त्रादिके कारणसे तत् प्रत्ययि राग अर्थात् कारणकी नवीनतासे रागकी नवीनता हुई परन्तु रागरहित आत्मा नहीं हुवा ऐसी जो परपरा उसको पारपर्य नित्यता कहते है इसका दूसरा नाम सतति नित्यता भी है। तथा कारण योग या निमितसे उत्पन्न हुवे नवीन २ पर्यायोंकी परिणमनतासे अर्थात् पूर्वपर्यायके व्यय, अभिनव पर्यायके उत्पादको अनित्य स्वभाव कहते हैं अथवा उत्पति, विनास स्वभावको अनित्य स्वभाव कहते हैं।

तत्र नित्यत्व द्विविध कूटस्थप्रदेशादिना, परिणामित्व-ज्ञानादि गुणाना, तत्रोत्पादव्ययावनेकप्रकारौ तथापि किञ्चि-

छिद्यते विस्रसाप्रयोगजभेदाद् द्विभेदो सर्वद्रव्याण चलन सहकारादि पदार्थ क्रियाकारण भवत्येव ।

अर्थ—नित्य स्वभावके दो भेद है (१) कूटस्थ–प्रदेशादि- भेद मे (२) परिणामिक–ज्ञानादि गुणों के भेदसे ये दोनो भेद उत्पाद व्यय रूपसे अनेक प्रकारके हैं तथापि किंचितलिखते हैं— विस्रसा, प्रयोगज भेद से दो प्रकार के हैं । सब द्रव्यों में चलन सहकारादि रूप क्रिया के कारणसे होते हैं ।

विवेचन—अन्य ग्रन्थों में नित्यपना दो प्रकारसे कहा है (१) कूटस्थ नित्यता (२) परिणामी नित्यता । जीवके असख्याते प्रदेश सख्यापने तथा आकाशप्रदेशका क्षेत्रावगाह और गुणके अ- विभाग पर्याय नहीं पलटते यह कूटस्थ नित्यता है

ज्ञानादिगुण सब परिणामिक नित्यतारूप है क्योंकि गुणका धर्म हीं ऐसा है जो समय समय कार्यरूपसे परिणत होता है इस लिये ज्ञानादिगुण परिणामिक नित्यतापने है अगर इनको कूटस्थ नित्यतापने मान लेंतो ? पहले समय जो ज्ञानसे जाना वहीं जा- नपना सर्वदा रहेगा परन्तु ऐसा नहीं होता और ज्ञेय (जानने योग्य वस्तु ज्ञेय है) नवीन भावसे नित्य परिणत होता है उस न- वीन अवस्थाको ज्ञान नहीं जान शक्ता इससे ज्ञानगुणकी अयथार्थता प्रतीत होती है और ज्ञेय जो घट पटादि जैसे पलटते हैं- उसको यथावत् जाने वही यथार्थ ज्ञान है वास्ते ज्ञानगुण उन नवीन २ ज्ञेयको जाने यह परिणामिक नित्य स्वभाव है । इस

तरह नित्यानित्य स्वभावी सबगुण है वह सब द्रव्योंमें अपनी २ क्रियाका कारण होता है

तत्र चलनसहकारित्व कार्यं धर्मास्तिकाय द्रव्यस्यप्रतिप्रदेशस्यचलनसहकारिगुणा विभागा. उपादानकारण कार्यस्यैव कार्यपरिमनात् तेन कारणत्वपर्यायव्यय' कार्यत्वपरिणामस्योत्पादः गुणत्व ध्रुवत्व प्रतिसमय करणस्यापि उत्पादव्ययौ कार्यस्याप्युत्पादव्ययाविरयनैकान्तजयपताकाग्रन्थे एव सर्वद्रव्येषु सर्वेषा गुणाना स्वस्वकार्यकारणात् ज्ञेया इति प्रथमव्याख्यानम् ॥

**अर्थ**—जैसे–धर्मास्तिकायका चलनसहकारीपना मुख्य कार्य है अधर्मास्तिकायका स्थिरसहायिपना मुख्य कार्य है आकाशद्रव्य का अवगाहदान मुख्य कार्य है जीवका जानपना, देखना रूप उपयोग मुख्य कार्य है और पुद्गल का वर्ण गध रस स्पर्श मुख्य कार्य है इत्यादि स्वकार्यका उत्पन्न होना हीं भवन धर्म है और जो भवन धर्म है वही उत्पाद है और उत्पाद व्यय सहित होता है इस तरह भवन धर्मका स्वरूप तत्वार्थ सूत्र में कहा है।

उत्पाद, व्यय दो प्रकार से होता है (१) प्रयोगसा (२) विश्रसा यह परिणामिक और स्वाभाविक धर्मसे होता हैं स्वाभाविक उत्पाद व्यय का स्वरुप कहते है धर्मास्तिकायादि छे द्रव्योंमें अपने २ चलन सहकारादि गुणोंकी प्रवृत्तिरूप अर्थ क्रिया होती है और चलनसहकारित्व धर्म धर्मास्तिकाय के प्रतिप्रदेशमें रहा

हुवा है वही चलन सहकारादि गुणविभाग उपादान कारण है और वही कार्यरूपसे परिणमन होता है इसी लिये कारणताका व्यय कार्यता का उत्पाद और चलनसहकारीत्व धर्म ध्रुव है इसी तरह अधर्मास्तिकायमें स्थिर सहाय गुण की प्रवर्तना, आकाशास्तिकाय में अवगाह, गुणकी प्रवर्तना, पुद्गलास्तिकायमें पूरण गलनादि गुणकी प्रवर्तना और जीव द्रव्यमें ज्ञानादि गुण की प्रवर्तना होती है। अनेकान्तजयपताका ग्रन्थमें ऐसा भी लिखा है कि गुणमें प्रतिसमय कारणपना नया नया उत्पन्न होता है अर्थात् कारणपनेका उत्पाद व्यय है और कारणवत् कार्यता का भी उत्पाद व्यय होता है इसी तरह सव द्रव्यों के प्रत्येक गुणमें कार्य कारणता का उत्पाद व्यय होता है यह उत्पाद व्यय की प्रथम व्याख्या कही।

तथाच सर्वेषा द्रव्याणा परिणामिकत्व पूर्वपर्यायव्ययः नवपर्यायोत्पादः एवमप्युत्पादव्ययौ द्रव्यत्वेन ध्रुवत्व इति द्वितीयः।

अर्थ—सर्व द्रव्यों में परिणामिकभावसे पूर्वपर्याय का व्यय और नवीन पर्याय का उत्पाद ऐसा उत्पाद व्यय समय २ होता है तथा द्रव्यपने ध्रुव है यह दूसरा भेद कहा।

प्रतिद्रव्यं स्वकार्यकारणपरिणमनपरावृत्तिगुणप्रवृत्तिरूपा परिणतिः अनन्ता अतीता एका वर्तमाना अन्या अनागता योग्यतारूपास्ता वर्त्तमाना अतीता भवन्ति अनागता वर्त्तमाना भवन्ति शेषा अनागता कार्ययोग्यतासन्नता लभन्ते इत्येवरूपा-

त्पादव्ययौ गुणत्वेन ध्रुवत्व इति तृतीयः । अत्र केचित् कालापेक्षया परप्रत्ययत्व वदन्ति तदसत् कालस्य पञ्चास्तिकाय पर्यायत्वनैवाऽऽगमे उक्तत्वादिय परिणति स्वकालत्वेन वर्तनात् स प्रत्यक्ष एव तथा कालस्य भिन्नद्रव्यत्वेपि कालस्य कारणता अतीता अनागत वर्तमान भवन तु जीवादिद्रव्यस्यैव परिणतिरिति ॥

अर्थ—प्रत्येक द्रव्य में स्वकार्य कारणरुप परिणमन है वह परावृत्ति-पलटनगुण प्रवृत्तिरुप है ऐसी परिणति अतीत काल में अनती हो गई, वर्तमान काल में एक है और दूसरी अनागत योग्यतारुप अनन्ती है। वर्तमान परिणति अतीत होती है अर्थात् उस परिणति में वर्तमानता का व्यय, अतीतपने का उत्पाद और परिणतिरूप से ध्रुव है और अनागत परिणति जो वर्तमान होती है वहां अनागतपने का व्यय, वर्तमानता का उत्पाद और आस्तिरुप से ध्रुव है शेष अनागत कार्य की योग्यता जो दूर थी वह समीपता को प्राप्त होती है, अर्थात् दूरता का व्यय और समीपता का उत्पाद तथा अतीत में समिलित हुई वहां दूरता का उत्पाद और समीपता का व्यय इसी तरह सब द्रव्यों में अतीत, अनागत, वर्तमान रुप परिणति हमेशा होती है यह गुणपने उत्पाद, व्यय और द्रव्यरुप से ध्रुव इस तरह उत्पाद व्यय का तीसरा भेद कहा।

कितनेकाचार्य इसको काल की अपेक्षा ग्रहण करके पर प्रत्यय कहते है यह अयुक्त है क्यो कि काल द्रव्य पचास्तिकाय

की पर्याय है और परिणति द्रव्य का स्वधर्म है और स्वकालरुप वस्तु का परिणाम भेद यही स्वरुप काल है अगर काल को भिन्न द्रव्य मानते है तो भी काल है यह कारणरुप है और अतीत, अनागत वर्तमानरुप परिणति है यह जीवादि द्रव्य का धर्म है इस वास्ते यह उत्पाद व्ययभी स्वाभाविक है ।

तथा च सिद्धात्मानि केवलज्ञानस्य यथार्थ ज्ञेयज्ञायकत्वात् यथा ज्ञेया धर्मादि पदार्था' तथा घटपटादिरुपा वा परिणमन्ति तथैव ज्ञाने भासनाद् यस्मिन् समये घटस्य प्रतिभासः समयान्तरे घटध्वसे कपालादि प्रति भास तदा ज्ञाने घटा प्रतिभासध्वंस' कपाल प्रति भासस्योत्पाद ज्ञानरुपत्वेन ध्रुवत्वमिति तथा धर्मास्तिकाये यस्मिन् समये सख्येयपरमाणुना चलनसहकारिता अन्य समये असख्येयाना एव संख्येयत्वसहकारिताव्यय असख्येयानन्तसहकारिता उत्पाद चलन सहकारित्वे धुवत्व एवम धर्मादिष्वपि ज्ञेय एव सर्वगुणप्रवृत्तिपु इति चतुर्थः ॥

अर्थ—सिद्धात्मा में केवलज्ञान गुण सम्पूर्णरुप से प्रगट है, वे जिस समय जो ज्ञेय जिस भावमे परिणत होता है । उसी समय यथा रुप से जानते है जैसे धर्मादि द्रव्य तथा घटपटादि ज्ञेयपदार्थ जिस प्रकार से प्रणमन करते है उसीरुप में केवलज्ञान जानता है जिस समय घट ज्ञान था वह समयान्तर घट ध्वस होनेपर कपालज्ञान हुवा उस समय घट प्रतिभास का ध्वस, कपाल

प्रतिभास का उत्पाद और ज्ञानरुप से ध्रुव इसी तरह दर्शनादि सब गुणों का प्रवर्तन समझ लेना।

जिस समय धर्मास्तिकाय सख्यातप्रदेश परमाणु का चलन सहकारी था वह फिर समयान्तर असख्यात परमाणु को चलनसहकारी है तब सख्यात परमाणु के चलनसहकारीपने का व्यय और असख्यात, अनन्त परमाणु के चलनसहकारपने का उत्पाद है तथा चलनसहकारी गुणरुप से ध्रुव है

इसी तरह अधर्मास्ति कायादि में सब गुणों की प्रवृत्ति होती है इस रीति से द्रव्य में अनन्त गुण की प्रवृत्ति है।

प्रश्न—धर्मास्तिकाय के चलनसहकार गुण में अनन्त जीव और अनन्त पुद्गल परमाणु की चलनसहकारीता हैं, और अब वह सख्यात, असखेयात जीव, परमाणुओं को चलनसहकारिता पने प्रवर्तमान है उस समय वह कौनसा गुण है जो अप्रवर्तमान रुप से रहा हुवा है।

उत्तर—जो निरावर्ण द्रव्य है उसके गुण अप्रवर्तन नहीं रहवे किन्तु–चलन सहकारी गुण के सब पर्याय जिस समय जितने जीव, पुद्गल परमाणु आवे उस सब को चलन सहकारीता पने होते है क्यों कि अलोकाकाश में जो अवगाहक जीव, पुद्गल नहीं है तो भी अवगाहक दानगुण तो प्रवर्तमान ही है इसी तरह धर्मास्तिकायादि में भी न्यूनाधिक जीव, पुद्गल के प्राप्त होनें

पर गुण के सब पर्याय प्रवर्तमान होते है। यह गुणपर्याय के उत्पाद, व्याय, ध्रुव का चोथा स्वरुप कहा

तथा सर्वे पदार्थाः अस्तिनास्तित्वेन परिणामिन तत्रास्ति भावाना स्वधर्माणा परिणामिकत्वेन उत्पादव्ययौ स्तः नास्ति भावाना परद्रव्यादिना पगावृतौ नास्तिभावाना परावृत्तित्वेनाप्युत्पादव्ययौ ध्रुवत्वं च अस्तिनास्ति द्वयौ इति पञ्चमः।

अर्थ—सब द्रव्य आस्तिनास्तिरुप दो स्वभाव परिणामी है स्वद्रव्यादि माही अस्तिस्वभाव है जिस समय ज्ञानगुण घट जानता है उस समय घट ज्ञान की आस्तिता है और घट ध्वस होने पर कपालज्ञान हुवा उस समय घट ज्ञान के अस्तिता का व्यय और कपालज्ञान के अस्तिता का उत्पाद यह अस्तिता का उत्पाद व्यय कहा। इसी तरह नास्तिताका का भी उत्पाद व्यय समझ लेना।। पर द्रव्य के पलटने से नास्तिता पलटती है और स्वगुण परिणामिक कार्य के पलटने से अस्तिता पलटती है जहा पलटन–परिवर्तन भाव है वहा उत्पाद व्यय होता है इस तरह सब द्रव्यों में सामान्य भाव से सब धर्म है जिस पदार्थ में जैसा सभव हो वैसा जिन आगम को आबाधित पने उपयोग पूर्वक उत्पाद, व्यय का स्वरुप कहना आस्तिनास्तिपने ध्रुव है यह पाचवाँ अधिकार कहा।

तथा पुनः अगुरुलघुपर्यायाणां षड्गुणहानिवृद्धिरूपाणा प्रतिद्रव्य परिणमनात् नानाहानिव्ययेवृद्ध्युत्पाद वृद्धिव्यये

हान्युत्पाद ध्रुवत्व चागुरुलघुपर्याणा एव सर्व द्रव्येषु ज्ञेय "तत्वार्थवृतौ" आकाशाधिकारे यत्राप्यवगाहकजीवपुद्गलादि- र्नास्ति तत्राप्यगुरुलघुपर्यायवर्तनयावश्यत्वे चानित्यताभ्युपेया ते च अन्ये अन्ये च भवन्ति अन्यथा तत्र नवोत्पादव्ययौ ना- पेक्षिकाविति न्युनएव सल्लक्षणस्यात् इति पष्ठ ॥

अर्थ—सर्व द्रव्य और पर्याय अगुरुलघु धर्म संयुक्त होवे है प्रत्येक द्रव्य के प्रतिप्रदेश में अगुरुलघु धर्म अनन्त है वह प्रदेश या पर्याय में किसी समय हानि और किस समयवृद्धि को प्राप्त होता है, हानि, वृद्धि के छे छे भेद है जिसका स्वरुप आगे लिख चुके है जैसे–परमाणु मे वर्णादि की हानि, वृद्धि होती है उसी तरह अगुरुलघु की भी हानिवृद्धि होती हैं जब हानिका व्यय है तब वृद्धि का उत्पाद है या वृद्धि का व्यय है तो हानि का उत्पाद है परन्तु अगुरु लघुता ध्रुव है इसी तरह सब द्रव्यों में समझ लेना ।

तत्वार्थ की टीका में आकाश द्रव्य के अधिकार में लिखा है कि अलोकाकाश में अवगाहक जीव पुद्गलादि द्रव्य नहीं है परन्तु वहा भी अगुरूलघु पर्याय अवश्य है और अनित्यता भी अंगीकार करते है वह अगुरूलघु पर्याय तथा प्रदेश में भिन्न भिन्न रूप से है पूर्व समय अगुरूलघु का व्यय और दूसरे समय नये अगुरूलघु का उत्पाद है अगर इस तरह उत्पाद व्यय की गवेषणा न की जाय तो अलोक में सत्लक्षण की न्यूनता होती

है "उत्पाद व्यय ध्रव युक्तसत्" द्रव्य सत् लक्षण युक्त माना है इस लिये अगुरूलघु का परिणमन सब द्रव्य, प्रदेश और पर्यायों में है. यह अगुरूलघु का उत्पाद व्यय कहा इति छठा अधिकार।

तथा भगवती टीकाया तथा च अस्तिपर्यायत. सामर्थ्यरूपाविशेष पर्यायास्ते चानन्तगुणास्ते प्रतिसमयंनिमित्तभेदे नपगट्चिस्पाः तत्र पूर्वविशेषपर्यायाणा नाशः अभिनव विशेष पर्यायाणामुत्पादः पर्यायन्न ध्रुवत्व इत्यादि सर्वत्र ज्ञेय इति सप्तमः॥

अर्थ—भगवतीसूत्र की टीका में कहा है कि अस्तिपर्याय मे विशेपरूप सामर्थपर्याय अनन्तगुण है अस्तिपर्याय ज्ञानादि गुण का अविभागरूप पर्याय है जो उस प्रत्येक पर्याय में सर्व ज्ञेय जानने का सामर्थ है वह विशेष पर्याय है तथा च महाभाष्ये "यावन्तो ज्ञेयास्तावन्तो ज्ञानपर्याया" इसी को सामर्थ पर्याय कहते हैं सामर्थ पर्याय ज्ञेय की निमितता से है ज्ञेय अनेक प्रकार से उत्पन्न होता है और अनेक प्रकार से विनाश होता है उसी तरह पर्याय भी पलटता है यह प्रति समय निमित भेद की परावृत्ति होने से पूर्व विशेष पर्याय का विनास और अभिनव विशेष पर्याय का उत्पाद हुआ करता है और पर्यायत्व से अस्तिता ध्रुव है इस तरह गुण पर्याय का उत्पाद व्यय ध्रवपना कहा इति सप्तमधिकार यह अस्ति नास्ति स्वभाव का स्वरूप विस्तार पूर्वक कहा।

नित्यताऽभावे निरन्वयता कार्यस्य भवति कारणाभावता च भवति अनित्यताया अभावे ज्ञायकतादि शक्तेरभाव' अर्थक्रियाऽसभव' तथा समस्तस्वभावपर्यायाधारभूतमन्यदेशाना स्वस्वक्षेत्रमेन्रूपाणामेकत्वपिंडीरूपापरत्याग एकस्वभाव ॥ क्षेत्रकालभावाना भिन्नकार्यपरिणामाना भिन्नप्रभावरूपोऽनेकस्वभावः एकत्वाभावे सामान्याभाव' ॥ अनेकत्वाभावे विशेप धर्माभाव. स्वस्वामित्व व्याप्यव्यापकताप्यभाव

अर्थ—जैसे अस्ति नास्तिपना कहा वैसे ही नित्यता, अनित्यता भी सब द्रव्यों में है नित्यता, अनित्यता बिना कोई द्रव्य नहीं है अगर द्रव्यमें नित्यता न हो तो कार्य का अन्वय किसको हो ? अर्थात् यह कार्य इस द्रव्यका है ऐसा नहीं कहा जा शक्ता द्रव्य में नित्यता मानने सेंहीं कार्य का अन्वय होता है अब जो द्रव्यको केवल नित्यपने हीं मानते हैं तो गुणका कार्य है वह भी द्रव्य का कहावेगा और गुण है वह द्रव्य नहीं है फिर द्रव्यमें नि यता के अभावसे कारणपने का अभाव होवा है इस लिये नित्यता माननी चाहिये और द्रव्य में अनित्यता का अभाव मानने से ज्ञायकतादि गुणरूप शक्तिका द्रव्य में अभाव हो जायगा अर्थक्रिया भी सभव नहीं होती क्योंकि किसी भी असमें अनित्यता मानने से ही अर्थ क्रिया होती कारण से उत्पन्न होता है वह पूर्व पर्याय
ध्वस और दूसरे नवीन का
है यह नित्यानित्य स्वभाव

अब एक और अनेक स्वभाव कहते हैं अस्तित्व, प्रमेयत्व और अगुरुलघुत्वादि समस्त स्वभाव तथा गुणविभागादि सब पर्यायों का आधारभूत क्षेत्र प्रदेश है (प्रदेश उस अविभाग को कहते है जो द्रव्यसे पृथक् न हो) वह स्वक्षेत्र भेदरूप से भिन्न २ हैं परन्तु एक पिंडीभूत रहते हैं उन प्रदेशों में क्षेत्रान्तर कभी नहीं होता जो अनन्त स्वभावी, अनन्तपर्यायी असख्यात प्रदेशरूप है उनका प्रमाण नहीं पलटता इस तरह द्रव्य में समुदायि पिंडपना रहता है उसको एक स्वभाव कहते हैं जैसे--पचास्तिकाय में (१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय ये तीन द्रव्य एकेक हैं जीवद्र य अनन्त है और पुद्गल परमाणु इससे भी अनन्त हैं एक जीव नये २ अनेक रूप धारण करता है परन्तु जीवत्वपने म अन्तर नहीं है यह द्रव्य का एक स्वभाव कहा।

क्षेत्र से असख्यात प्रदेश, कालसे उत्पाद व्यय और भाव से गुणके अविभाग पर्याय वे स्वकार्य भिन्न परिणामी है अर्थात् उन सबका प्रवाह भिन्न २ है और कार्यपना सब का भिन्न है इस लिये पर्याय भेदसे विवक्षा करने पर द्रव्य अनेक स्वभावी है. वस्तु में एकपने का अभाव मानने से सामान्यपना नहीं रहता तथा गुण, पर्याय का आधार कौन ? और आधार विना गुण, पर्याय जो आधेय है वह किस में रहे ? इस लिये द्रव्य में एकपना मानना चाहिये अब जो अनेकपना नहीं मानते हैं तो द्रव्य विशेष स्वभावसे रहित हो जायगा और विशेष स्वभाव से रहित होने पर गुणकी अनेकता का द्रव्य में अभाव होगा और

द्रव्यमें गुणका अनेकपना स्व, स्वामित्व और व्याप्य, व्यापक भावसे है जैसे–गुणपर्याय स्व–धन है और द्रव्य उसका स्वामी है अथवा–द्रव्य व्याप्य है तथा गुण पर्याय उसमें व्यापक रूपसे हैं इस लिये द्रव्य अनेक स्वभावी है। यह एक अनेक स्वभाव कहा।

स्व स्व कार्य भेदेन स्वभावभेदेन अगुरुलघुपर्यायभेदेन भेद-स्वभावः अवस्थानाधारताद्यभेदेन अभेदस्वभाव' भेदाभावे सर्वेगुणपर्यायाणा सङ्करदोष' गुणगुणी लक्ष्य.लक्षण: कार्य-कारणतानाश. अभेदभावे स्थान'स्वस. कस्यैते गुणा. को वा गुणी इत्याद्यभाव ।

अर्थ—अपने २ कार्य भेदसे, स्वभाव भेदसे और अगुरुलघु पर्याय भेदसे भेदस्वभाव है जैसे–जीवका स्वकार्य भेद ज्ञान गुणसे जानपना, चारित्र गुणसे स्थिरता रमणता और पुद्गल द्रव्य का कार्यभेद वर्ण गध रस स्पर्श रूप भिन्नता तथा–स्वभाव भेद–जैसे–अस्ति स्वभाव सद्भाव सबोधक है नित्य स्वभाव–अविनाशीपना, अनित्यस्वभाव–परिवर्तनरूप, एकपना–पिंडरूप और अनेकपना–प्रदेशादिका बोधक है इत्यादि स्वभाव भेद है तथा अगुरुलघुपर्यायभेद जैसे–प्रदेश में गुणविभाग में पृथक् पृथक है परस्पर तुल्य नहीं है किन्तु हानि वृद्धिरूप परिणमन है इत्यादि इस तरह वस्तुमें भेद स्वभाव रहा हुआ है।

अभेद स्वभाव कहते हैं, सब धर्मका अवस्थान अर्थात्

रहनेकी जगह और उसका आधारपना कभी भिन्न नहीं होता इस वास्ते द्रव्य में अभेद स्वभाव है।

द्रव्य, गुण, पर्यायमें भेद स्वभाव नहीं माननेसे संकरता दोषकी प्राप्ति होती है गुण गुणी, लक्ष लक्षण, कार्य कारणता का नाश होता है और कार्य भेद नहीं हो शक्ता इस वास्ते द्रव्य, गुण, पर्याय भेद स्वभावी है चेतना लक्षण सहित जीव और अजीव चेतना रहित वे अभेदपने है परन्तु अजीव में धर्मास्ति-काय द्रव्य चलन सहकारी है दूसरे अजीव द्रव्यो में यह गुण नहीं है इसी तरह अधर्मास्तिकाय स्थिर सहायगुणी है आकाश में अवगाहन गुण है और पुद्गल रूपी स्कधादि परिणामी है इस तरह सब द्रव्य भेद रूपसे भिन्न द्रव्य कहेजावे है अनन्ते जीव सब सरीषे हैं उन सब जीवों को एक द्रव्य क्यों नहीं कहते ? उत्तर–जैसे–रूपिया चादी रूपमें, उज्वलता और तौलपने सदस है परन्तु वस्तुरूप पिंडपने भिन्न है इसलिये वे भिन्न कहेजाते है इसी तरह जीवकी भी भिन्नता समझ लेनी उत्पाद व्ययका चक्र पूर्ववत है परन्तु परिवर्तन सबका एक समान नहीं हैं और अगु-रुलघुकी हानि वृद्धि का चक्र सब द्रव्यों में अपना २ है इसलिये सबजीव और सब परमाणु भिन्न २ है वास्ते भेद स्वभावमयि द्रव्य है।

वस्तु में अभेद स्वभाव नहीं मानने से स्थानध्वस होता है अर्थात् स्थान कौन स्थानमें रहनेवाला कौन इत्यादिका अभाव होता

है इसीतरह सर्वथा एकपना मानने से गुणी गुणकी पहचान नहीं होती इसवास्ते भेदाभेद स्वभावमयी वस्तु है

परिणामित्वे उत्तरोत्तर पर्यायपरिणमनरूपो भव्यस्वभाव –तथा तत्वार्थवृतौ इह तुह भावे द्रव्य भव्य भवनमिति गुणपर्याय भवनसमयस्थानमात्रका एव उत्पितार्सीत् कृटकज्ञायृतशयितपुरुषवत्देवत्व वृत्यतरव्यक्तिरूपेणोपदिश्यते, जायते अस्ति विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यतीति पिण्डातिरिक्त वृत्यतरावस्थाप्रकाशतया तु जायते इत्युच्यते सव्यार्थेश्च भवनवृत्ति' अस्ति इत्यनेन निर्व्यापारात्मसताऽऽऽयायते भवनवृत्तिरूदासीनता अस्तिशब्दस्य निपातत्वात् विपरिणमते इत्यनेन निरोभूतात्मरूपस्यानुच्छिन्नतथावृत्तिकस्य रूपान्तरेण भवन यथा क्षीर दधीभावेन परिणते निकरान्तरवृत्या भवनवृत्तिष्ठते वृत्यन्तरवक्तिहेतुभाववृत्तिर्वा विपरिणाम वर्द्धत इत्यनेन तूपचयरूवः प्रवर्तते यथाङ्कुरो वर्द्धते उपचयवत् परिणामरूपेण भवनवृत्तिर्व्यज्यते अपक्षीयते इत्यनेन तु तस्यैव परिणामस्यापचयवृत्तिराख्यायते दुर्वलीभवत् पुरषवत् पुरपदपचयरूप भवनवृत्तिन्तरव्यक्तिरुच्यते विनश्यति इत्येननाविर्भूतभवनवृत्तिस्तिरोभवनमुच्यते तथा विनष्टो घट प्रतिविशिष्टसमवस्थानात्मिका भवनवृत्तिस्तिरोभूता नत्वाभावस्यैवजाता कपालाद्युत्तर भवनवृत्य तरक्रमाविच्छिन्नरूपत्वादित्येवमादिभिराकारैर्द्रव्यार्थेव भवनलक्षणान्यपदिश्यन्ते, त्रिकालमूलावस्थाया अपरि-

त्यागम्पोऽभव्यस्वभावः, भव्यत्वाभावविशेषगुणानामप्रवृत्ति' अभव्यत्वाभावे द्रव्यान्तरापत्तिः ॥

अर्थ—भव्य तथा अभव्य स्वभाव कहते है जीवाजीवादि सब द्रव्य परिणामि है वे प्रतिसमय नवीन २ भाव को प्राप्त होते हैं जहा पूर्वपर्याय का व्यय और उत्तर पर्याय का उत्पाद ऐसी जो परिणती उस का मुख्य कारण भव्य स्वभाव है तत्वार्थ टीका में कहा है द्रव्यानुयोग भावधर्मसे अर्थात द्रव्यमें गुणपर्याय हैं वे भव्य स्वभावी हैं यह भवन धर्म हुवा ( सव्यापारैभवनवृत्ति ) व्यापार सहित क्रियाको भवन धर्म कहते हैं

वस्तु के गुणपर्याय है वे भवन समयवस्थान रूप है अर्थात् नवीनता समप्राप्तरूप हैं जैसे—विवक्षित पुरुष उठता है फिर वही बैठता है जागता है सोता है इत्यादि पर्याय प्रक्रिया पुरूष प्रत्ययि होती है इसीतरह वृत्त्यन्तर अर्थान पूर्वपर्याय का नाश उत्तरपर्याय का उत्पन्न होना उसको वृत्त्यन्तर कहते हैं वृत्त्यन्तर व्यक्तिरूप-पने उपदेशक है उसको भवन धर्मकी प्रवृत्ति कहते हैं

नवीन उत्पन्न होना, अस्तिपने रहना, विपरीतरूप से परि-णमन होना या समर्थ धर्मसे वृद्धि होना, अपचियते=घटना, विनश्यति=विनाश होना, पिंट=समुदाय इससे अतिरिक्त गुणकी अवृत्यन्तर अवस्था के प्रगट होनेसे भवन धर्म होता है भवनवृत्ति सव्यापार है किन्तु निर्व्यापार नहीं है।

अस्ति यह वचन निर्याधार आत्मशक्ति का अवबोधक है यह भवन वृत्ति से उदासीन है अर्थात्–भवन वृत्ति को ग्रहण नहीं करता निपरिणमते इस वाक्य से नहीं प्रगट हुई जो आत्मशक्ति उसका रूपान्तर होना यह भवनधर्म है जैसे–दुग्ध दधिभाव मे परिणमता है इस तरह विकारान्तर होना उसको भवन धर्म कहते हैं जिस ज्ञानादि पर्याय म अनन्त ज्ञेय जानने की शक्ति हैं परन्तु ज्ञेय जिस तरह परिणमता है उसी तरह ज्ञानगुणका प्रवर्तन विपरिणामपने प्रति समय प्रवर्तमान होता है यह भी भवनधर्म है पुन वृत्यन्तरवर्तना अन्य व्यक्ति के हेतु से भवान्तरपने वर्ते उसको विपरिणाम भवन धर्म कहते हैं फिर बढ़ते इस वचन से उपचयरूप से प्रवर्ते जैसे–अगुरु वृद्धि को प्राप्त होता है इसी तरह वर्णादि पुद्गल के गुण वृद्धि को प्राप्त होते है उस को उपचयरूप भवनवृत्ति कहते हैं ।

इसी तरह गुण का कार्यान्तर परिणमन वही द्रव्य का भवन धर्म है " अपक्षियते " उसी परिणाम का न्यून होना दुर्बल होता हुवा पुरुष की तरह जैसे पुरुष दुबल होता है वैसे पर्याय के घटने से द्रव्य तथा अगुरु लघु पर्याय के घटने से द्रव्य की दुरबल वृत्ति को क्षयरूप भवन धर्म कहते हैं " विनश्यति " इसी तरह विनाशरूप भवन धर्म इत्यादि अनेक प्रकार से वस्तु मे भवन धर्म है इस को भव्य स्वभाव भी कहते है तथा–अस्तित्व वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरु लघुत्वादि धर्म जो तीनों काल मे अपनी मूल अवस्था को नहीं छोडते यह उन का अभव्य स्वभाव है

जैसे–अनन्त प्रकार से उत्पाद व्यय के परिणमन होते हुवे भी जीवका जीवत्वपना नहीं बदलता ऐसे ही अजीव का अजीवत्वपना नहीं पलटता यह सब अभव्य स्वभाव का धर्म है ।

ये दोनों स्वभाव नहीं मानने से कौन से दोष की उत्पत्ति होती है वह बतलाते हैं द्रव्य मे भव्य स्वभाव नहीं मानने से द्रव्य का जो विशेष गुण गति सहकार, स्थिति सहकार, अवगाहदान, ज्ञायकता, वर्णादि पचास्तिकाय के गुण है उन की प्रवृत्ति नहीं होती और बिना प्रवृत्ति के कार्य सिद्ध नहीं होती और कार्य सिद्धि बिना द्रव्य व्यर्थ है इस लिये भव्य स्वभाव मानना चाहिये ।

अगर द्रव्य मे अभवनरूप अभव्य स्वभाव न हो और केवल भवन स्वभाव ही हो तो सब धर्म परिवर्त्तनरूपता को प्राप्त होंगे और एक द्रव्य दुसरे द्रव्य में मिल जायगा तथा द्रव्यत्व, सत्त्व, प्रमेयत्वादि अभव्य धर्म का नाश होता है इस वास्ते द्रव्य मे अभव्य स्वभाव भी है ।

वचनगोचरा ये धर्मास्ते वक्तव्या', इतरे अवक्तव्याः। तत्राक्षरा' सख्येयाः तत्सन्निपाता असख्येया' तद्गोचरा भावा' भावश्रुतगम्या' अनन्तगुणाः वक्तव्यभावे श्रुताग्रहणात्वापत्ति अवक्तव्यभावे अतीतानागतपर्यायाणा कारणतायोग्यतारूपाणामभव' सर्वकार्याणा निराधारताऽऽपत्तिश्च सर्वेषा पदार्थाना ये विशेषगुणाश्चलनस्थित्यवगाहसहकारपुरणगलनचेतनादयस्ते—

परमगुणा शेप. साधारणा' साधरणासाधारणगुणास्तेपा तदनुयायीप्रवृत्तिहेतु परमस्वभाव इत्यादय सामान्य स्वभाव'।

अर्थ—आत्मा का वीर्य गुण जो वीर्यान्तिराय कर्म से आच्छादित है उस वीयान्तराय के क्षयोपशम या क्षय होने से प्रगट हुवा जो वीर्य धर्म उस को भापा पर्याप्ति नामकर्म के उदय से भापा वगणा के पुद्गल को ग्रहण कर के शब्दपन प्रयोग करते हैं वे शब्द पुद्गल स्कंध हैं परन्तु श्रोताजनों के लिये व ज्ञान के हेतु हैं, जिस मे गुण नहीं वह गुण का कारण नहीं होता एसा जो कहते ह वे मिथ्या हैं, क्यों कि जो निमित कारणरूप है उस मे गुण हो किवा न भी हो परन्तु उपादान कारण मे उस गुण की योग्यता निश्चय है, और जो वस्तुधम वचनयोग स ग्रहण होने योग्य है उस को वक्तव्य धर्म कहते हैं, और इस से इतर जो धर्मास्तिकाय मे अनेक धर्म ऐसे हैं, वे वचन स अग्राह्य हैं, वे सब धर्म अवक्तव्य कहे जाते हैं, वक्तव्य धर्म से अवक्तव्य धम अनन्तगुण हैं, वचन तो सख्याते हैं, परन्तु उन वचनो म ऐसा सामर्थ्य है कि सब अवक्तव्य धर्म का भी ज्ञान होता है, उक्त च—अभिलापा जे भावा अणत भागो य अण अभिलाप्पाण अभिलाप्य माणतो भाग सु ए निवद्धोअ ॥ १ ॥ तत्र अक्षर सख्यात हैं उन अक्षरों के सन्निपात सयोगी भाव असख्यात हैं उन सन्निपात अक्षरों से ग्रहण करनेयोग्य जो पदार्थादि के भाव व अनन्त गुण हैं उससे अवक्तव्य भाव अनन्त गुण है मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान अभिलाप्य भावका परोक्षग्राहक हैं अवधिज्ञान पुद्गल को प्रत्यक्ष प्रमाण से

जाननेवाला है परन्तु एक परमाणु के सब पर्यायों को नहीं जानता किंतु कितनेक पर्यायों को जानता है और कालसे असंख्यात समय जानता है केवलज्ञान छओं द्रव्य के सब पर्यायों को एक समय प्रत्यक्षरूप से जानता है इसलिये द्रव्यमें वक्तव्यता धर्म न होतो श्रुतज्ञान से ग्रहण नहीं हो सक्ता और इसके विना ग्रन्था-भ्यास, उपदेशादि सब नहीं हो सक्ते इसलिये द्रव्यमें वक्तव्य सभाव है।

अवक्तव्य सभाव नहीं मानते हैं तो ? वस्तुमें अतीत पर्याय जो कारणता की परपरा म रही है तथा अनागत पर्याय सब योग्यता में रही है उन सबका अभाव होता है जिस समय वस्तु में वर्तमान पर्याय की अस्ति है उसमें अतीत, अनागत का ज्ञान नहीं होता इसलिये अवक्तव्यस्वभाव अवश्य मानना चाहिये नहीं तो वर्तमान सब कार्य निराधार हो जायगा और द्रव्य में एक समय अनन्ते कारण हैं वे कारण अनन्त कार्य धर्मरूप हैं अनन्त कार्य के अनन्त कारण उसका परपर ज्ञान केवलीको हैं वर्तमान कारण धर्म तथा कार्य धर्मसे अनन्त गुण कारण, कार्यकी योग्यता रूप सत्ता म है वे किसी के अविभाग नहीं है किन्तु अविभागी ज्ञानादिगुण मे अनन्त कारण, कार्य धर्म उत्पन्न होने की योग्यता रूप सत्ता है यह सब अवक्तव्य रूप है।

अब परम स्वभाव का स्वरूप कहते हैं सब धर्मास्तिका-यादि पदार्थ के विशेषगुण–जैसे–धर्मास्तिकाय का चलनसहकारी-पना, अधर्मास्तिकायका स्थिरसहकारीपना, आकाशास्तिकाय का

अवगाहनदान, पुद्गलास्तिकायका पूरण गलनपना और जीव द्रव्य का चेतना लक्षण ये सब द्रव्यों का विशेष गुण है इसे लक्षण से दूसरे द्रव्यसे भिन्न करने के लिये मूल कारण हो वह परम-प्रकृष्ट गुण है वे गुण भी पचास्तिकाय में मिलते हैं यथा—अविनाशीत्व, अगुरुलघुत्व, अस्तित्वादि धर्म पचास्तिकाय म सत्य रूपसे हैं इस वास्ते इनको साधारण गुण कहते हैं तथा—पचास्तिकाय के किसी द्रव्यमें कोई गुण मिले और किसी में नामिले उसको साधारणासाधारण गुण कहते हैं सब गुण विशेष गुण के अनुयायि वर्तते हैं इस प्रवर्तना का कारण द्रव्य में परमस्वभाव पना है परमस्वभाव के परिणमनसे द्रव्यके सब गुण मुख्य गुण के अनुयायिपने प्रवर्तन होते हैं यह परमस्वभाव सब द्रव्यों मे है इस तरहसामान्य स्वभावका स्वरूप कहा फिर अनेकान्तजयपताका म कहा है।

तथास्तित्व, नास्तित्व कर्तृत्व, भोक्तृत्व, असर्वगतत्व, प्रदेशवत्त्वादिभावाः पुन तत्त्वार्थ टीकाया पुनरप्यादिमहण कुर्वन् ज्ञापयत्यनन्तधर्मत्व तत्रासक्ता प्रस्तारयन्तु सर्वे धर्माः अनिरूप्य प्रवचनज्ञेन पुसा यथासभवमायोजनीया' क्रियावत्व पर्यायोपयोगित्वा प्रदेशाष्टकनिश्चलना एव प्रकाराः सति भूयास अनादिपरिणामिका भवन्ति जीवस्यभावा धर्मादिभिस्तु समाना इति विशेषः ॥

अर्थ—अस्तित्व नास्तित्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, असर्वगतत्व और प्रदेशवत्त्वादि अनन्त स्वभावमयि द्रव्य है तत्वार्थ टीकामें पारिणामिक भावके भेदों की व्याख्या करते हुवे कहा हैं—पुनरपि

आदि शब्द ग्रहण करते हुवे यह सबोधन किया है कि वस्तु अनन्त धर्ममयि है उन सबको विस्तार पूर्वक नहीं कह सक्ते तथापि प्रत्येक द्रव्यमे प्रवचन का जाननेवाला पुरूष यथा सभवित धर्म को सयोजे,–तथा–" क्रियात्व " ज्ञानादि गुण जो लोकालोक जानने के लिये प्रतिसमय प्रवर्तमान है, तथा " श्रीभाष्यकारे ' ज्ञानादि गुण धारण और उसी गुण की प्रवृत्ति को क्रिया समझनी ऐसे कहा है, तथा देखना यह कार्य ऐसेही धर्मास्तिकायादि के सब गुण वनि परिणती मे परिणामी है, इसतरह पचास्तिकाय अर्थ क्रियाका कर्ता है, यह क्रियात्वपना कहा ।

अब " पर्यायोपयोगिता " पर्याय का उपयोगीपना यह जीव का स्वभाव है, धर्म० अधर्म० आकाश० इन तीनों अस्तिकायों के प्रदेश कालमे अनादि अनन्त अवस्थितरूप है, पुद्गल का चलपना सदा–सर्वदा है, पुद्गल परमाणु तथा पुद्गल स्कंध सख्यात या असख्यात काल पर्यंत एकक्षेत्र मे रहसक्ते हैं, पीछे अवश्य चलभाव को प्राप्त होते है, जीवद्रव्य सकर्मी ससारीपने क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर, गमनभावसे भवान्तर गमनरूप चलपना है, उस जीवको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र की प्रगटतासे परभाव भोगीपना निवारण करके आत्मस्वरूप, निरधारस्वरूप, भासनस्वरूप परिणमन होनेसे एकत्वस्वरूप, स्वधर्मकर्त्ता, स्वधर्मभोक्ता, सकल परभाव त्यागी, निरावरण, नि सग, निरामय, निर्द्वंद, निष्कलक निर्मल स्वयि अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अरूपी, अव्याबाध, परमानन्दमयि सिद्धात्मा,

सिद्धक्षेत्रमें रहे हुवे सादिअनन्त कालपने समस्तप्रदेश मे स्थिर हैं और ससारी जीवों के आठ रुचकप्रदेश सदा स्थिर है वे आठों प्रदेश निरावरण हैं श्री आचाराङ्गकी शेलाङ्गाचार्य कृत टीकामें लोकविजय अध्ययन के प्रथम उद्देशामे यथा—यदनेन पचदशविधेनापि योगेनात्मा अष्टौ प्रदेशान् विहाय तप्तभाजनोदकवदुद्वर्तमानैः सर्वैरेवात्मप्रदेशैरात्मप्रदेशावष्टब्धाकाशस्थ कार्मणशरीरयोग्य कर्मदलिक यद् बध्ननाति तत् प्रयोगकर्मत्युच्यते ॥ अर्थात् इन आठ प्रदेशो में कर्म नहीं लगते

आठो प्रदेश निरावरण है तो लोकालोक क्यों नहीं देखते? उत्तर—आत्माकी जो गुणप्रवृत्ति है वह सब प्रदेशों के मिलनेसे प्रवर्तमान होती है वे आठ प्रदेश अल्प हैं अल्पत्वात् निरावरण होनेपर भी कार्य नहीं कर सक्ते जैसे-अग्नि का सूक्ष्म कण दाहक प्रकाशक पाचक होते हुवे भी अल्पता के कारण दाहकादि कार्य नहीं कर सक्ते

वे आठो प्रदेश निरावरण कैसे रहे? उत्तर—जो चल प्रदेश हैं उनमें कर्म लगते हैं अचल प्रदेशों के कर्म नहीं लगते भगवतीसूत्र म कहा है—" जेअइ वयइ चलइ फन्दइ घट्टइ सेयधइ" ऐसा पाठ है इस वास्ते चल प्रदेश हो वे कर्म बाधे आठ प्रदेश अचल हैं इस वास्ते कर्म नहीं बाधते। कार्याभ्यास से प्रदेश इकठे होते हैं तब इन प्रदेशोंके गुण भी उस कार्य का करने के लिये प्रवर्तमान होते हैं तथा जिस प्रदेशका जो गुण है वह उस प्रदेश को छोड़के अन्य प्रदेश में नहीं जाता जीवके आठ प्रदेश हमेशां निरावरण रहते हैं दूसरे प्रदेशाम अक्षर का अनन्तवा भाग चेत-

भाव से निरावरण है इसतरह बहुत से अनादि परिणामिक भाव होते हैं वे अनादि परिणामिक भाव जीवके हैं और धर्मास्तिकायादिमें सर्वप्रदेशादिकी सामानता है। यह विशेष स्वभाव कहा।

भिन्नभिन्नपर्यायप्रवर्त्तनस्वकार्यकारणसहकारभूताः पर्यायानुगतपरिणामविशेषस्वभावा ते च के, १ परिणामिकता, २ कर्तृता, ३ ज्ञायकता, ४ ग्राहकता, ५ भोक्तता ६ रक्षणता, ७ व्याप्यव्यापकता, ८ आधाराधेयता, ९ जन्यजनकता, १० अगुरुलघुता, ११ विभूतकारणता, १२ कारकता, १३ प्रभुता, १४ भावुकता, १५ अभावुकता, १६ स्वकार्यता, १७ सप्रदेशता, १८ गतिस्वभावता, १९ स्थितिस्वभावता, २० अवगाहकस्वभावता, २१ अवगाहता, २२ अचलता, २३ असङ्गता, २४ अक्रियता, २५ सक्रियता इत्यादि स्वीयोपकारणप्रवृत्तिर्निमित्तिका' उक्त च सम्मतौ आरोपापचारेण पर्यायेन तत्र वस्तुधर्मः उपाधिनाभवनात् न चोपाधिर्वस्तुगत्ता इति ॥

अर्थ—विशेष स्वभाव कहते हैं भिन्न भिन्न पर्यायका कार्य कारण प्रवर्त्तन में सहकार भूत जो पर्यायानुगत परिणामिक भाव उसको विशेष स्वभाव कहते हैं वे अनेक प्रकार से हैं श्री हरीभद्र सूरिकृत शास्त्र वार्ता समुचय ग्रन्थमें कहा है उसको कहते हैं, (१) सब द्रव्यों के अपने अपने गुण प्रतिसमय कार्य करनेके लिये भिन्न भिन्न परिणाम रूपसे प्रवर्तमान होते हैं वे अपने गुणके कारणिक हो उसको परिणामिक स्वभाव कहते हैं (२) तत्र

कर्तृत्व जीवस्य नन्येषां " जीव कर्ता है अन्य नहीं " अप्पकत्ता विकत्ताय " इति उत्तराध्ययनवचनात् (३) ज्ञायकता—जानने की शक्ति जीवमें है अथवा ज्ञानलक्षण जीव है " गिन्हई कायिएणं " इति आवश्यक निर्युक्तिवचनात् (४) ग्राहकता=ग्रहणशक्ति भी जीवमें है गृह्णामिति क्रियाका कर्ता जीव है (५) भोक्ताशक्ति भी जीवमें है " जो कुणइ सो भुंजइ ॥ य कर्ता स एव भोक्ता " इति वचनात् (१) रक्षणता (२) व्याप्यव्यापकता (३) आधाराधेयता (४) जन्यजनकता तत्वार्थवृत्ति में है (१) अगुरुलघुता (२) विभूता (३) कारणता (४) कार्यता (५) कारकता इन शक्तियों की व्याख्या श्रीविशेषावश्यक में है (१) भावुकता (२) अभावुकता शक्तिका वर्णन श्रीहरिभद्रसूरिकृत भावुकनामा प्रकरण में है और कितनीक शक्तियों का वर्णन अनेकान्तजयपताका, सम्मतितर्कादि जैन तर्कग्रन्थोमें लिखा है

उर्ध्वप्रचयशक्ति, तिर्यक्प्रचयशक्ति, ओघशक्ति और समुचितशक्ति का वर्णन सम्मतिग्रन्थ में है और जो द्विगुणात्मा मानने वाले हैं वे सर्वधर्म शक्तिरूप मानते हैं उन्होंने दानादिलब्धी और अन्याबाधादि सुख को शक्तिरूपसे माना है यहां व्याख्यानमें जो गुणको करण कहा है वहां कर्तादिपना है वह सामर्थ्यरूप है जानना, देखना यह कार्य है कितनीक शक्तियां जीवमें हैं और कितनीक पंचास्तिकाय में है

तथा देवसेनजी कृत नयचक्रमें जीवको अचेतन, स्वभाव, मूर्त स्वभाव तथा पुद्गलपरमाणुको चेतन स्वभाव, अमूर्त स्वभाव

कहा है वे श्रमन है इनको आरोपपने मे कोई कह भी द तो केवल कथनमात्र है परन्तु अस्तिरूप नहीं है जिसप्र मंकी आराप से वा उपचार से गवेपणा कि जाय वह वास्तवीक वस्तुधर्म नहीं है उपाधीरूप है और उपाधी है वह वस्तु सत्ता नहीं समझी जाती। यह विशेष स्वभाव कहा

धर्मास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रियागतिसहायान्यागुणा. ।
अधर्मास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रिया स्थितिसहायादयो गुणा ।

आकशास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रियावगाहनादयो गुणाः पुद्गलास्तिकाये मूर्ताचेतनासक्रियपुरणगलनादयोवर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणा जीवास्तिकाये ज्ञानदर्शनचारित्रवीर्य अव्याबाधामूर्ताऽगुरुलघ्वनवगाहादयो गुणा. । एव प्रति द्रव्य गुणानामनन्तत्वं ज्ञेयम् ॥

अर्थ— धर्मास्तिकायके चार गुण (१) अरूपी (२) अचेतन (३) अक्रिय (४) गतिसहाय इत्यादि अनन्तगुणी है । अधर्मास्तिकायके चार गुण (१) अरूपी (२) अचेतन (३) अक्रिय (४) स्थितिसहाय इत्यादि अनन्तगुणी है । आकाशास्तिकाय के चार गुण (१) अरूपी (२) अचेतन (३) अक्रिय (४) अवगाहनादि अनन्त गुणी है । पुद्गलास्तिकायके चार गुण (१) रूपी (२) अचेतन (३) सक्रिय (४) पुरणगलन (१) वर्ण (२) गंध (३) रस (४) स्पर्श इत्यादि अनन्तगुणी है । जीवास्तिकाय मे (१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) वीर्य (५) अव्याबाध (६) अरूपी (७) अगुरुलघु

(८) अन अवगाहनादि अनन्त गुण है इस तरह पचास्तिकाय अनन्त गुणमयी है।

## आगमसारसे षड्द्रव्यके पर्याय

धमास्तिकाय के चार पर्याय (१) स्कंध (२) देश (३) प्रदेश (४) अगुरुलघु। अधर्मास्तिकायके चार पर्याय (१) स्कंध (२) देश (३) प्रदेश (४) अगुरुलघु आकाशास्तिकायके चार पर्याय (१) स्कंध (२) देश (३) प्रदेश (४) अगुरुलघु। पुद्गलास्तिकायके चार पर्याय (१) वर्ण (२) गंध (३) रस (४) स्पर्श अगुरुलघु सहित। कालद्रव्यके चार पर्याय (१) अतीतकाल (२) अनागतकाल (३) वर्तमान काल (४) अगुरुलघु। जीवास्तिकायके चार पर्याय (१) अव्याबाध (२) अनवगाही (३) अमूर्त (४) अगुरुलघु । इत्यादि

# नयाधिकार.

पर्याया' पाढा द्रव्यपर्याया (१) असमये प्रदेशसिद्धत्वाद-य । (२) द्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः द्रव्याणा निजगुणाश्चेतनादय श्चलनसहकारादयश्च, ( ३ ) गुणपर्याया. गुणाविभागादय, ( ४ ) गुणव्यञ्जनपर्याया. ज्ञायकादयः कार्यरूपाः मतिज्ञानादयः ज्ञानस्य, चक्षुदर्शनादयो दर्शनस्य, क्षमामार्दवादयः चारित्रस्य, वर्णगन्धस्पर्शादयो मूर्तस्य इत्यादि ( ५ ) स्वभावपर्याया. अगुरुलघुविकारा' ते च द्वादशप्रकाराः पट् गुण हानिवृद्धिरूपाः अवाग्गोचरा. एते पञ्चपर्याया' सर्वद्रव्येषु ( ६ ) विभावपर्याया. जीवे नरनारकादय ॥ पुद्गलेद्वचणुकतोऽनन्ताणुकपर्यन्तास्कन्धा ।

अर्थ—अब नयाधिकार कहते है, नयके मुख्य दो भेद हैं, ( १ ) द्रव्यास्ति ( २ ) पर्यायास्ति जिस म द्रव्यास्तिनय के दो भेद ( १ ) शुद्ध द्रव्यास्ति, ( २ ) अशुद्ध द्रव्यास्ति देवसेन कृत पद्धति म द्रव्यास्ति के दश भेद किये है वे सब दो भेदो मे समावेस होते हैं और सामान्य स्वभाव म उन का समावेस हो गया है इस लिये यहा वरणन नहीं करते आगे देख लेना ।

पर्यायास्तिक नय के छे भेद हैं ( १ ) द्रव्य मे एकत्वपने रहे हुये जीवादि के असख्यात प्रदेश तथा आकाश क अनन्त प्रदेश इनको द्रव्य पर्याय कहते हैं और सिद्धत्व, अखण्डत्वादि

तथा द्रव्यका प्रगटपना मानते हैं उस को द्रव्य व्यंजन पर्याय कहते हैं।

( २ ) द्रव्य का वह गुण जो अन्यद्रव्य में नहीं होता उस को विशेषगुण कहते हैं, जैसे—जीव का चेतनादि, धर्मास्तिकाय का चलनसहकार, अधर्मास्तिकाय का स्थिरसहकार, आकाश मे अवगाहदान, और पुद्गल में पुरणगलनपना ये गुण द्रव्य की भिन्नता को प्रगट करते हैं, इस लिये इन को व्यंजन पर्याय कहते हैं।

( ३ ) प्रत्येक गुण के अविभागपर्याय अनन्त हैं, उन के पिंड को अर्थात् उन अविभागपर्यायों के समुदाय को गुण पर्याय कहते हैं।

[ ४ ] ज्ञान का जाननापन, चारित्र का स्थिरतापन अथवा—ज्ञान के मतिज्ञानादि पांच भेद, दर्शन के चक्षुदर्शनादि, चारित्र के क्षमा मार्दवादि भेद तथापुद्गल का वर्णगन्धरसस्पर्शमूर्तादि और अरूपी गुण का अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श इत्यादि गुण हैं वे गुण व्यंजन पर्याय हैं।

[ ५ ] स्वभाव पर्याय—वस्तु का कोई स्वभाव ऐसा जो अगुरुलघुपने छे प्रकार की हानि तथा छे प्रकार की वृद्धि एवं बारह प्रकार से परिणमन करता है इस में किसी का प्रयोग—सहायता नहीं है किन्तु वस्तु का मूल स्वभाव—धर्म ही है, इस का स्वरूप पूर्णतया वचनगोचर नहीं होता और अनुभवगम्य भी

नहीं है क्यों कि ठाणागसूत्र की टीका मे श्रुतज्ञान के अधिकार का सात अग कहा है [१] सूत्र [२] निर्युक्ति [३] भाष्य [४] चूर्णि जो सूत्रानि सत्र का अर्थ प्रकाश करे [५] टीका–निरन्तर व्याख्या, ये पाच अग ग्रन्थरूप है, [६] परपरारूप अग [७] अनुभवरूप अग इन सातों का विनय सहित पठनपाठन करने से सचे अर्थ की प्राप्ति होती है, और आत्मा का निरमल गुण प्रगट होता है श्रीभगवती सूत्र मे कहा है'–" सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निजुत्तिमिसिओ भणीओ तइयो अनिर विसेसो एस विहि होइ अणुओगो " ये पाच पर्याय सब द्रव्यो में होते हैं।

[ ६ ] विभाव पर्याय–यह जीव और पुद्गल मे हैं, जीव में नरनारकादिरूप विभाव पर्याय है और पुद्गल मे द्वेणुकादि यावत् अनन्ताणुकस्कध तथा अनन्त गुणपर्यन्त स्वधरूप विभाव पर्याय है।

## ॥ निक्षेप स्वरूप ॥

मेर्वाद्यनादिनित्यपर्यायाः चरमशरीरत्रिभागन्यूनावगाहनादयः सादिनित्यपर्यायाः सादिसान्तपर्यायाः भवशरीराध्यवसायादयः अनादिसान्तपर्यायाः भव्यत्वादय तथा च निक्षेपा॰ सहजरूपा वस्तुन. पर्याया एव चत्वारो वत्थुपज्जाया इति भाष्य वचनात् नामयुक्तेमति वस्तुनि निक्षेपचतुष्टय युक्तम् उक्तं चानुयोगद्वारे जत्थ य ज जाणिज्जा, निक्खेवं निरिखवे निरवसेस, जत्थ य नो जाणिज्जा, च उक्क निरिक्खे तत्थ, तत्र नामनिक्षेपः स्थापनानिक्षेपः द्रव्य-

निक्षेपः भावनिक्षेप तत्र नामनिक्षेपो द्विविधः सहजा आरोपजा च, द्रव्यनिक्षेपो द्विविध. आगमतो नोआगमतश्च तत्र आगमत तदर्थज्ञानानुपयुक्त', नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीर तद्व्यतिरिक्तभेदात्रिधा, भावनिक्षेपो द्विविधः आगमतो नोआगमतश्च तद्ज्ञानोपयुक्त तद्गुणमयश्च वस्तुस्वधर्मयुक्त तत्र निक्षेपा वस्तुन स्वपर्यायाः धर्मभेदा ।

अर्थ—पुद्गल का मेरू प्रमुख अनादि नित्य पर्याय है। जीव की सिद्धावस्था, सिद्धावगाहनादि सादि नित्यपर्याय है। वीर्य के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले भाव, शरीर और अध्यवसाय ये तीनो योग स्थान जिस म कषाय स्थान जो चेतना के क्षयोपशम कषाय के उदय से प्राप्त हुआ और संयम स्थान जो चारित्र का क्षयोपशम परिणामी चेतनादि गुण ये सब अध्यवसायस्थान सादि सान्त पर्याय हैं। सिद्धगमनयोग्यता धर्म—भव्यत्वपर्याय अनादि सान्त है क्यो कि सिद्धता प्रगट होने पर भव्यत्व पर्याय का विनाश होता है इस वास्ते अनादि सान्तपना कहा।

वस्तुस्वपर्यायापेक्षा प्रत्येक वस्तुमें सामान्यरूपसे चार निक्षेप है, विशेषावश्यक भाष्य मे कहा है, "चत्तारो वत्थु पज्जाया" इति वचनात् स्वपर्याय कहा है, अनुयोगद्वार मे कहा है कि जिस वस्तु में जितने निक्षेप ज्ञान हो उतने कहना कदाचित् विशेष निक्षेपका भाप न हो तो नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव यह चारे निक्षेप अवश्य कहना।

नाम निक्षेप के दो भेद ( १ ) सहजनाम ( २ ) सांकेति-

कनाम । स्थापना निक्षेप के दो भेद ( १ ) सहज स्थापना जो वस्तु की अवगाहना रूप ( २ ) आरोपस्थापना जो आरोपकर के स्थापन की जाय अर्थात् कृत्रिम । द्रव्यनिक्षेप के दो भेद ( १ ) आगमसे द्रव्यनिक्षेप जो जीव स्वरूप के विना जाने तपसयमादि क्रिया करनी या लाज मर्यादा के वास्ते सूत्र सिद्धान्त पढना (२) नोआगम द्रव्यनिक्षेप वस्तु गुण सहित है परन्तु वर्तमान में गुणरूप नहीं है जिसके तीन भेद (१) ज्ञशरीर—मरे हुवे पुरुषका शरीर जैसे—रूषभदेव स्वामी के शरीर की भक्ती जवूद्वीपपन्नती में लिखी है (२) भव्य शरीर–वर्तमान में तो गुण नहीं है परन्तु गुणमय होगा जैसे–एवन्तामुनि (३) तद्व्यतिरिक्त–जो गुण सहित विद्यमान है परन्तु वर्तमान में उपयोग सहित नहीं वर्तता । भाव निक्षेप के दो भेद (१) आगमसे भाव निक्षेप जो आगमसे अर्थ को जाननेवाला और उपयोग सहित वर्तता है (२) नोआगमसे भावनिक्षेप जिस प्रकारसे ज्ञेय वर्तता है वही रूप है ।

इन चार निक्षेपों में प्रथम के तीन निक्षेप कारणरूप है और चौथा भाव निक्षेप कार्यरूप है भाव निक्षेपको उत्पन्न करने के लिये पहिले के तीन निक्षेप सप्रमाण है अन्यथा अप्रमाण है पहिले के तीन निक्षेप द्रव्यनय है और भावनिक्षेप भावनय है भावनिक्षेप को नहीं उत्पन्न करनेवाली केवल द्रव्य प्रवृत्ति निष्फल है श्री आचाराङ्ग सूत्र की टीकाके लोकविजय अध्ययन में कहा है " फलमेव गुण फलगुण फल च क्रिया भवति तस्याश्च क्रियाया,

अनात्यन्तिकोगुनैकान्तिको भवेत फल गुणोप्यगुणो भवति सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र क्रिया यास्ते कान्तिकानानाय सुखाख्यसिद्धि गुणोऽनाप्यते एतदुक्त भवति सम्यग् दर्शनादिकैव क्रियासिद्धि फल गुणेन फलवत्परा तु सासारिक सुख फलाभ्यास एव फलाध्यारोपान्निष्फलत्वर्थ "

रत्नत्रयी परिणाम विना जो क्रिया करनी है उससे ससार सुख मिलता है वह क्रिया निष्फल है एसा पाठ है इसलिये भावनिक्षेप के कारण विना पहिले के तीन निक्षेप निष्फल है निक्षेप है वह मूल वस्तु का पर्याय है और वस्तु का स्वधर्म है।

॥ नयस्वरूप ॥

नयास्तु पदार्थज्ञाने ज्ञानाशा तत्रानन्तधर्मात्मके वस्तुन्येक धर्मोन्नयन ज्ञाननय तथा " रत्नाकर " नीयते येन श्रुताख्य-प्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्याशस्तदितराशौदासीन्यत स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषोनय, स्वाभिप्रेतादशापलापी पुनर्नयोभासः, स व्याससमासाभ्या द्विप्रकार. व्यासतोऽनेकविकल्पः समासतो द्विभेद. द्रव्यार्थिक' पर्यायार्थिकः तत्र द्रव्यार्थिकश्चतुर्धा (१) नैगम, (२) सग्रह', (३) व्यवहार', (४) ऋजुसूत्रभेदात्, पर्यायार्थिकस्त्रिधा (१) शब्द (२) समभिरूढः (३) एवभूतभेदात्।

अर्थ—पदार्थ के ज्ञानाशको नय कहते हैं–जिसका लक्षण ॥ वस्तु अनन्त धर्मात्मक है जैसे–जीवादि एक पदार्थ मे अनन्त धर्म है. उसमे से एक धर्म की गवेषणा की और अन्य अनन्ते धर्म रहे हुवे है उनका उच्छेद भी नहीं और ग्रहण भी नहीं.

किन्तु एक धर्म की मुख्यता स्थापित करनी उसको नय कहते है इसकी विस्तार पूर्वक व्याख्या की जाय तो नयके अनेक भेद होते हैं परन्तु संक्षेपमे दो भेद हैं (१) द्रव्यास्तिक (२) पर्यायास्तिक इनका वर्णन रत्नाकरावतारिका ग्रन्थमे लिखते हैं " द्रवति द्रोष्यति अदुद्रवत् तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्य तदेवार्थः सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन स द्रव्यार्थिक "

वर्तमानकाल मे पर्याय का उत्पादक हैं, भूत—अतीतकाल म उत्पाद कथा भवीष्य काल मे उत्पादक होगा उसको द्रव्य कहते हैं उसी अर्थका प्रयोजनपना है जिसमे अर्थात् पर्याय है जन्य और द्रव्य है जनक तथा द्रव्य है वह ध्रुव है और पर्याय है अध्रुव अर्थात् उत्पाद व्यय रूप उक्त च।

" पर्येति उत्पादविनाशौ प्राप्नोतीति पर्याय स एवार्थ सोऽस्ति यस्यासौ पर्यायार्थिक " जिस पर्यायसे उत्पाद विनासरूप नवीनता प्राप्त हो ऐसे स्वरूपानुयायी को पर्यायार्थिक नय कहते हैं। उस द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक धर्म को द्रव्य, पर्याय भी कहते हैं।

प्रश्न—द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो भेद कहे हैं वैसे तीसरा गुणार्थिक भेद क्यों नहीं कहते ?

उत्तर—इसके लिये रत्नाकरावतारिका में कहा है " गुणस्य पर्याये ऽन्तरभूतत्वात् तेन पर्यायार्थिकेनैव तत् सङ्गृहात " अर्थात्—गुण पर्याय मे अन्तरभूत है इस लिये पर्यायार्थिक में इस

का समावेस होता है। पयायार्थिक के दो भेन्द हैं (१) सहभावि, (२) क्रमभावि, सहभावि गुण है जह पर्याय मे अन्तरभूत है।

प्रश्न—द्रव्य पर्याय से व्यतिरिक्त सामान्य, विशेष दो धर्म और भी हैं। तो सामान्य, विशेष दो नय और क्यो नहीं कहते ?

उत्तर—तथाहि "द्रव्यपर्यायाभ्या व्यतिरिक्तयो सामान्य विशेषयोरप्रसिद्धे तथाहि द्विप्रकार सामान्यमुक्तमूर्ध्वतासामान्य तु प्रतिव्यक्तिसदृशपरिणामलक्षण व्यञ्जनपर्याय एव" इस पाठ से उर्ध्वसामान्य तो द्रव्य का धर्म हैं। और तिर्यक् सामान्य पर्याय धर्म है। "विशेषोऽपि वैसादृश्यविवतलक्षणपर्याय एवान्तर्भवति नैताभ्यामधिकनयावकाश"। और विशेष का लक्षण अनेक रीति से वतना सो इस का पर्यायार्थिक म अन्तर भाव–समावेस होता है इस लिये सामान्य विशेष को भिननय कहना योग्य नहीं है।

द्रव्यार्थिक नय के चार भेद हैं [१] नैगम (२) सग्रह (३) व्यवहार (४) ऋजुसूत्र और पर्यायार्थिक के तीन भेद हैं (१) शब्द (२) समभिरूढ (३) एवभूत

विकल्पान्तरे ऋजुसूत्रस्य पर्यायार्थिकनाप्यस्ति स नैगम-स्त्रिप्रकारः आरोपाशसङ्कल्पभेदात् विशेषावश्यकेतूपचारस्य भिन्नग्रहणात् चतुर्विधः। न एकं गमा आशयविशेषा यस्य स नैगम' तत्र चतु प्रकारा आरोप द्रव्यारोपगुणारोपकाला-रोपकारणाद्यारोपभेदात् तत्र गुणे द्रव्यारोप. पञ्चास्तिकाय-

वर्तनागुणस्य कालस्य द्रव्यकथन एतद्गुणो द्रव्यारोपः १ ज्ञानमेवात्मा अत्र द्रव्येगुणारोप' २ वर्तमानकाले अतीतकालारोपः अद्य दीपोत्सवे वीरनर्वाण वर्तमानकाले अनागतकालारोप अद्येव पद्मनाभनिर्वाणं, एव षड् भेदाः कारणे कार्यारोप' वाह्यक्रियाया धर्मत्व धर्म कारणस्य धर्मत्वेन कथन। सङ्कल्पो द्विविध. स्वपरिणामस्य कार्यान्तरपरिणामश्च अशोपि द्विविध भिन्नोऽभिन्नश्चेत्यादि शतभेदोनैगमः।

अर्थ---कोई ऋजुसूत्रनय को विकल्प मे पर्यायार्थिक भी कहते हैं क्यो कि यह विकल्पनय हैं अस्तु नैगम के तीन भेद हैं (१) आरोप (२) अंश (३) सकल्प तथा-विशेपावश्यक मे उपचाररूप चौथा भेद भी कहा है नएकगमो-अभिप्राय उस को नैगमनय कहते हैं अर्थात् नैगमनय अनेक आशयी है। आरोप-नैगम के चार भेद हैं (१) द्रव्यारोप (२) गुणारोप (३) काला-रोप (४] कारणाद्यारोप

(१) गुणविपय द्रव्य का आरोप करना उस को द्रव्यारोप कहते हैं जैसे वर्तना परिणाम पचास्तिकाय का परिणमन धर्म है उस को काल धर्म कहना यहा काल को द्रव्य कहा यह आरोप से है किन्तु वस्तुरूप भिन्न पिडपने द्रव्य नहीं है इति द्रव्यारोप (२) द्रव्य मे गुण का आरोप करना जैसे-ज्ञान आत्मा का गुण है परन्तु ज्ञानी वही आत्मा इस तरह ज्ञान को आत्मा कहा यह गुणारोप। (३) कालारोप-जैसे-वीर भगवान को निर्वाण हुवे

बहुत काल हुआ परन्तु आज दीवाली के दिन वीर भगवान का नीर्वाण हुवा ऐसा कहते हैं यह वर्तमान में अतीत काल का आरोप है अथवा आज पद्मनाभ प्रभु का निर्वाण है ऐसा कहना यह वर्तमान काल में अतीत काल का आरोप हुवा इसी तरह अतीत अनागत वर्तमान काल के दो २ भेद करने से कालारोप के छे भेद होते हैं

(४) कारण विषय कार्य का आरोप करना जिस के चार भेद ( १ ) उपादानकारण २ निमितकारण ३ असाधारणकारण ४ अपेक्षाकारण जैसे–बाह्य क्रिया है वह साध्यसापेक्ष वाले को धर्म के लिये निमित्त कारण है इस लिये धर्मकारण कहना इसी तरह तीर्थंकर मोक्ष का कारण है इस लिये उनको तिन्नाण तारयाण कहना यह कारणविषय कर्तापने का आरोप कहा इस तरह आरोपता अनेक प्रकार से है। सकल्प नैगम के दो भेद हैं १ स्वपरिणामरूपवीर्य चेतना के नवीन २ क्षयोपशम २ कार्यान्तर से नये २ कार्य से नया २ उपयोग होना। और अश नैगम के भी दो भेद हैं- १ भिन्नाश–जुदे २ अश स्कधादि २ अभिन्नाश–आत्मा के प्रदेश तथा गुण के अविभाग इत्यादि ये सब नैगमनय के भेद हैं।

सामान्य वस्तुसत्ता सङ्ग्राहक सङ्ग्रह स द्विविध सामान्यसङ्ग्रहो। विशेषसङ्ग्रहश्च, सामान्यसङ्ग्रहो। द्विविध मूलत उत्तरश्च मूलतोऽस्तित्वादिभेदत षड्विध उत्तरतो जातिसमु-

दायभेदरूपः जातित गवि गोत्र घटे घटत्व वनस्पतौ वनस्पतित्व समुदायतो सहकारादनके वने सहकारवन, मनुष्यसमुहे मनुष्यवृद, इत्यादि समुदायरूप अथवा द्रव्यमिति सामान्य सङ्ग्रहः जीव इति विशेषसङ्ग्रह. तथा विशेषावश्यके ' सगहण सगिन्हइ संगिन्ह तेवनेण ज भेया तो सगहो सगिहिय पिंडियत्थ वउज्जास्स " सग्रहण सामान्यरूपतया सर्ववस्तुनामाक्रोडन सङ्ग्रहः अथवा सामान्यरूपतया सर्वं गृह्णातीति सङ्ग्रहः अथवा सर्वेपि भेदाः सामान्यरूपतया सङ्गृह्यन्ते अनेनेति सङ्ग्रह अथवा सङ्गृहीत पिण्डित तदेवार्थोऽभि धेयमस्य तत् सङ्गृहीतपिण्डितार्थं एव भूत वचो यस्य सङ्ग्रहस्येति सङ्गृहीतपिण्डित तत् किमुच्यत इत्याह सगहीय मागहीय सपिंडिय मेगजाइमाणीय ॥ सगहीयमणुगमो वावइरे गोपिंडिय भणिय ॥ ? ॥ सामान्याभिमुख्येनग्रहण सगृहीतसङ्ग्रह उच्यते, पिण्डित त्वेकजातिमानितमभिधियते पिण्डितसङ्ग्रहः अ र सर्वव्यक्तिष्वनुगतस्य सामान्यस्य प्रतिपादनमनुगमसङ्ग्रहोऽभिधियते व्यतिरेकस्तु तदितर धर्मनिषेधाद् ग्राह्यधर्मसङ्ग्रहकारक व्यतिरेक सङ्ग्रहो भण्यते यथा जीवो जीव' इति निषेधे जीवसङ्ग्रह एव जाताः अत १ सङ्ग्रह २ पिण्डितार्थ ३ अनुगम ४ व्यतिरेकभेदाच्चतुर्विध अथवा स्वसत्ताख्य महासामान्य सगृह्णाति इतरस्तु गोत्वादिकमवान्तरसामान्य पिण्डितार्थमभिधीयते महासत्तारूप अवान्तरसत्तारूप " एग निच्च निरवय-

वमक्रिय सव्वग च सामान्न* एतद् महासामान्य गवि गोत्वादिन्मवान्तरसामान्यमिति समह

अर्थ—समह नय का स्वरूप कहते है सामान्यसे सब द्रव्या मे मुख्य व्यापक नित्यत्वादि सत्तारूप जो धर्म रहा हुवा है उसके समहक को समह नय कहते है जिसके दो भेद है (१) सामान्य समह (२) विशेष समह, सामान्य समह के दो भेद (१) मूल सामान्य (२) उत्तर सामान्य मूल सामान्य समह के आस्तित्वादि छे भेद है जिसकी व्याख्या पहिले कर चुके है और उत्तर सामान्य समह के दो भेद है (१) जाति सामान्य (२) समुदाय सामान्य जैसे—गाय के समुदाय म गोत्वरूप जाति है, घटमें घटत्व और वनस्पति के समुदाय में वनस्पतिपना यह जाति समुदाय है और आव के समुह को अवरन कहना, मनुष्य के समुह को मनुष्यगण इसको समुदाय सामान्य कहते है यह उत्तर सामान्य समह चक्षु अचक्षु दर्शन माही है और मूल सामान्य समह अवधिदर्शन, केवलदर्शन माही है

तथा सामान्यसमह और विशेष समह जो छे द्रव्य के समुदाय को द्रव्य मानना उसको सामान्य समह कहते हैं इसमें सब का ग्रहण होता है और जीवको जीव द्रव्य कहके अजीव द्रव्य से जुदा भेद करना यह विशेष समह है इसका विस्तार

---

* एक सामान्य सवत्र तस्यैव भावात् तथानित्य सामान्य अविनाशात् तथा निरवयव अदशत्वात्, अक्रिय देशान्तरगमनाभावात् सर्वगत च सामान्य अक्रियत्वादिति ॥

बहुत है किन्तु विशेषावश्यक से संग्रह नयके चार भेद लिखते है और मूल पाठमें कही हुई गाथा का अर्थ है ।

" संग्रहण " एकवचन–या–एक अध्यवसाय–उपयोग से एकसाथ ग्रहण किया जाय अथवा सामान्यरूप से सब वस्तु का ग्रहण हो उसको संग्रह कहते हैं या सामान्यरूप से सब संग्रह करता है उसको संग्रह कहते हैं या जिससे सब भेद सामान्यपने ग्रहण किया जाय उसको संग्रह कहते हैं अथवा " संगृहीत पिण्डित " जो वचन समुदाय अर्थ को ग्रहण करे उसको संग्रह कहते है इसके चार भेद हैं ( १ ) संगृहीत संग्रह ( २ ) पिण्डित संग्रह ( ३ ) अनुगम संग्रह ( ४ ) व्यतिरेक संग्रह ।

( १ ) सामान्यरूप से जो बिनापृथक् किये वस्तु को ग्रहण करे ऐसा जो उपयोग या वचन या धर्म किसी भी वस्तु में हो उसको संगृहीत संग्रह कहते हैं

( २ ) एक जाति के लिये एकपना मान के उस एक में सब का संग्रह हो जैसे–" एगेआया " " एगेपुग्गले " इत्यादि वस्तु अनन्त है परन्तु एक जाति को ग्रहण करता है उसको पिंडित संग्रह कहते है ।

( ३ ) अनेक जीवरूप अनन्त व्यक्ति है उन सब में जिस धर्म की सामान्यता है जैसे–सत् चित मयि आत्मा यह धर्म सब जीवो में सदृश है ऐसे ही जीव के लक्षण, सर्व प्रदेश, सर्व गुण- को अनुगम संग्रह कहते है ।

( ४ ) जिमसे अग्रहण करने मे इतर सब का ग्रहण ज्ञान हो जैसे अजीव है इस के कहने से जीव नहीं वह अजीव परन्तु कोई जीव भी है ऐसे व्यतिरेक वचन की सिद्धी हुई या उपयोग से जीव का ग्रहण हुवा यह व्यतिरेक संग्रह ।

अर्थान्तर संग्रहनय क ो भेद कहते है (१) महा सत्ता रूप (२) अवान्तर सत्तारूप इस तरह दो भेद भी संग्रह नय के कहे हैं

" सदिति भणियम्मि जम्हा, सव्वत्थाणुप्पवभए वुद्धी । तो सव्व तम्मत नत्थितदत्थतर किंचि ॥ १ ॥ यस्मात् सदित्येव भणिते सर्वत्र भुवनत्रयान्तर्गतवस्तुनि वुद्धिरनुप्रवर्तते प्रधावति नहि तत् किमपि वस्तु अस्ति यत् सन्नित्युक्ते भणिति वुद्धौ न प्रतिभासते तस्मात् सव सत्तामत्र न पुन अर्थान्तर तत् श्रुतसामर्थ्यात् यत् संग्रहेन संगृह्यते तेन परिणमारूपत्वादेव संग्रहस्येति "

अर्थात्—तीन भुवन में ऐसी कोइ वस्तु नहीं है जो संग्रहनय से ग्रहण न होती हो जो वस्तु है वह सब संग्रह नय ग्राही है यह संग्रहनय का स्वरूप कहा

संग्रहगृहीतवस्तुभेदान्तरेण विभजन व्यवहरण प्रवर्त्तन वा व्यवहारः १ स द्विविध शुद्धोऽशुद्धश्च । शुद्धो द्विविधः वस्तु गतव्यवहार, धर्मास्तिकायादिद्रव्याणा स्वस्वचलनसहकारादि जीवस्य लोकालोकादिज्ञानादिरूप स्वसम्पूर्णपरमात्मभावसाधनरूपो गुणसाधकावस्थारूप गुणश्रेणयारोहादिसाधनशुद्ध-व्यवहार । अशुद्धोपि द्विविध सद्भूता सद्भूतभेदात् सद्-

भूतव्यवहारो ज्ञानादिगुणाः परस्पर भिन्नः असद्भूतव्यवहारः कषायात्मादि मनुष्योऽहं देवोऽहं। सोऽपि द्विविधः संश्लेषिताशुद्धव्यवहारः शरीर मम अहं शरीरी। असंश्लेषितासद्भूतव्यवहार पुत्रकलत्रादि, तौ च उपचरितानुपचरितव्यवहारभेदात् द्विविधौ तथा च विशेषावश्यके "ववहरण ववहरए स तेण व वहीरए व सामन्नं। ववहारपरो व जओ विसेसओ तेण ववहारो" व्यवहरण व्यवहारः व्यवहरति स इति वा व्यवहारः विशेषतो व्यवह्रियते निराक्रियते सामान्य तेनेति व्यवहारः लोको व्यवहारपरो वा विशेषतो यस्मात्तेन व्यवहार'। न व्यवहारास्वस्वधर्मप्रवर्तितेन ऋते सामान्यमिति स्वगुणप्रवृत्तिरूपव्यवहारस्यैव वस्तुत्व तमतरेण तद्भावात् स द्विविधः विभजन, १ प्रवृत्ति २ भेदात्। प्रवृत्तिव्यवहारस्त्रिविधः वस्तुप्रवृत्ति १ साधनप्रवृत्तिः २ लोकप्रवृत्तिश्च साधनप्रवृत्तिश्च त्रिधाः लोकोत्तर, लौकिक, कुप्रावचनिक, भेदात् इति व्यवहारनयः श्री विशेषावश्यके ॥

अर्थः—अब व्यवहारनय की व्याख्या करते हैं, संग्रहमे ग्रहित जो वस्तु उसका भेदान्तरसे विभाग करना उसको व्यवहार नय कहते हैं, जैसे द्रव्य यह संग्रहात्मक सामान्य नाम है विवेचन करनेपर द्रव्य के दो भेद (१) जीवद्रव्य (२) अजीव द्रव्य पुन जीवद्रव्य के दो भेद (१) सिद्ध (२) संसारी इत्यादि रूपसे भिन्नता करनी यह व्यवहारनय का स्वभाव है अथवा व्यवहार प्रवर्त्तन को व्यवहारनय कहते हैं। जिसके दो

भेद हैं, ( १ ) शुद्धव्यवहार ( २ ) अशुद्धव्यवहार शुद्धव्यवहार के दो भेद ( १ ) सब द्रव्य की स्वरूपशुद्ध प्रवृत्ति जैसे–धर्मास्तिकाय की चलन सहकारिता, अधर्मास्तिकाय की स्थिरसहकारिता और जीव की ज्ञायकता इत्यादि वस्तुगत शुद्धव्यवहार है ( २ ) द्रव्य की उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिये रत्नत्रयी, शुद्धता, गुणश्रेणी विषयक श्रेण्यारोहणरूप साधन को शुद्धव्यवहार कहते हैं ।

अशुद्ध व्यवहार के दो भेद हैं ( १ ) सद्भूत ( २ ) असद्भूत जिस क्षेत्रमें अवस्था अभेद से रहे हुवे जो ज्ञानादि गुण उन को परस्पर भेद से कहना यह सद्भूत व्यवहार हैं। तथा मे क्रोधी, मैं मानी, मे देवता, मे मनुष्य इत्यादि यह अशुद्ध व्यवहार है। जिस हेतु के परिणमन से देवपना प्राप्त किया वह देवगति विपाकी कर्म प्रकृती का उदयरूप परभाव है जिसको यथार्थ ज्ञान विना ज्ञानशून्यजीव एकत्वरूप से मानता है इसी अशुद्धता के कारण अशुद्ध व्यवहार कहा इसके भी दो भेद हैं ( १ ) सश्लेषित अशुद्धव्यवहार यथा–शरीर मेरा और मे शरीरी इत्यादि ( २ ) असश्लेषित असद्भूतव्यवहार जैसे–पुत्र मेरा धनादि मेरा इत्यादि तथा सश्लेषितअसद्भूतव्यवहार के दो भेद हैं उपचरित, अनुपचरित ।

विशेषावश्यक भाष्य मे व्यवहार नय के दो भेद कहे हैं (१) विभजनविभागरूप व्यवहार ( २ ) प्रवृत्तिव्यवहार । प्रवृत्तिरूप व्यवहार के तीन भेद ( १ ) वस्तु प्रवृत्ति ( २ ) साधनप्रवृत्ति ( ३ ) लौकिक प्रवृत्ति। साधनप्रवृत्ति के तीन भेद (१) अरिहन्त

की आज्ञासे शुद्धसाधन मार्ग इहलोक संसार पुद्गल भोग तथा आससादि दोषरहित रत्नत्रयी की परिणति, परभावत्याग सहित लौकोत्तर साधनवृत्ति ( २ ) स्याद्वादविना मिथ्याभिनिवेश साधनवृत्ति ( कुप्रावचनिकसाधन ) ( ३ ) स्वस्वदेश, कुलमर्यादाप्रवृत्ति इसको लोक व्यवहार प्रवृत्ति कहते हैं इत्यादि व्यवहार नय के भेद समझना। 'द्वादशसार नयचक्र' मे एकेक नय के सौ सौ भेद कहे हैं तत्त्वज्ञान की जिज्ञासावालों को चाहिये वे उस ग्रन्थ को देखें और मनन करे इति व्यवहार नय ॥

उक्त ऋजु सुय नाणमुज्जुसुयमस्स सोऽयमुज्जुसुश्रो। सुत्तयइ वाजमुज्ज वत्थु तेणुज्जुसुत्तोति ॥ १ ॥ उऊतिऋजुश्रुत सुज्ञान नाथरुप ततश्च ऋजु अवक्रमश्रुतमस्यसोऽयमृजुश्रुत वा अथवा ऋजु अवक्र वस्तु सूत्रयतीति ऋजुसूत्र इति कथ पुनरेतदभ्युपतगस्य वस्तुनोऽवक्रत्वमित्याह ॥ पच्चुपन्न सपयमुप्पन्न ज च जस्स पत्तेय। त ऋजु तदेव नस्सत्थि उवक्कमन्नति जमसत ॥ २ ॥ यत्साम्प्रतमुत्पन्न वर्तमानकालीन वस्तु, यच्च यस्य प्रत्येकमात्मीयतदेव तदुभयस्वरूप वस्तुमत्युत्पन्नमुच्यते तदेवासौ नयः ऋजु प्रतिपाद्यते तदेव च वर्तमानकालीन वस्तु तस्यार्जुसूत्रस्यास्ति अन्यत्र शेषातीतानागत परकार्थं च यश्स्मात् असदविद्यमान ततो असत्त्वादेव तद्वक्रमिच्छत्यसाविति। अत एव उक्त निर्युक्तिकृता "पच्चुपन्नगाही उज्जुसुनयविही मुणेयव्वोति" यतः कालत्रये वर्तमानमतरेण वस्तुत्व उक्त च यत अतीत अनागत भविष्यति न साम्प्रत तद् वर्तते इति वर्त-

गानस्यैव वस्तुत्वमिति अतीतस्य कारणात्। अनागतस्य कार्येना जन्यजनकभावेन प्रवर्तते अत. ऋजुसूत्र वर्तमानग्राहक तद् वर्तमान नामादिचतु प्रकार ग्राह्यम् ॥

अर्थ—ऋजुसूत्र नय का स्वरूप कहते हैं ऋजु-सरल श्रुत-बोध उसको ऋजुसूत्रनय कहते हैं ऋजु शब्दसे अवक्र अर्थात् सम है श्रुत उसको ऋजुसूत्र कहते हैं या ऋजु-अवक्रपने वस्तु को जाने उसको ऋजुसूत्र कहते हैं अब वस्तुका वक्रपना समझाते हैं वर्तमानकाल में जो वस्तु है वह ऋजुसूत्र नय ग्राही है अन्य जो अतीत अनागतरूप वस्तु है वह ऋजुसूत्र की अपेक्षामे नास्ति है अर्थात् असत्य है क्यों कि अतीतकाल तो विनास हो गया और अनागतकाल आया नहीं है इसवास्ते अतीत, अनागत वस्तु अवस्तुरूप है और जो वतमान पर्यायसे है वह वस्तु है पूव और पश्चातकाल ग्राही नैगमनय है

प्रश्न—ससारी जीवों को सिद्धसमान कहते हो और अनागत काल म सिद्ध हो गये हैं तो आप अतीत अनागतकाल को अवस्तु क्यों कहते हो ?

उत्तर—हे भद्र ! अनागत भावीकेलिये नहीं कहते हैं किन्तु-वर्तमान में सर्वगुणों का आत्मप्रदेशो में सद्भाव है परन्तु उनगुणों की आवर्णदोषसे प्रवृत्ति नहीं है इसलिये तिरोभावीपना सग्रह करके कहा है परन्तु वस्तु मे केवलज्ञानादि सब गुणों का सद्भाव है इसलिये उनको सिद्ध कहा है

वस्तु नामादिपर्याय युक्त है इसलिये नामादि निक्षेप भी इसी ऋजुसूत्र नयके भेदमें है नामादितीन निक्षेप द्रव्य है और भावनिक्षेप है यह भाव है यह व्याख्या कारण, कार्य को विभाग करने के लिये है परन्तु सामान्यरूप से वस्तुमें चारनिक्षेप है वे भाव धर्मपने हैं और स्व स्वकार्यकर्ता हैं दिगम्बराचार्य ऋजुसूत्र के दो भेद कहते हैं ( १ ) सूक्ष्मऋजुसूत्र ( २ ) स्थूलऋजुसूत्र वर्तमानकाल का एक समयग्राही सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय है और बहु-कालिक स्थूलऋजुसूत्रनय है यह कालापेक्षी भाव है इसलिये इस को भावनय कहते हैं और योगालम्बीपने ग्राह्य है इसलिये द्रव्य-नय में भी इसकी गवेषणा की है । इति ऋजुसूत्रनय॰

" शप आक्रोशे " शपनमाह्वानमिति शब्दः, शपतीति वा आह्वानयतीति शब्दः, शप्यते आहूयते वस्तु अनेनेति शब्दः, तस्यशब्दस्य यो वाच्योऽर्थस्तत्परिग्रहात्तत्प्रधानत्वान्नयशब्द॰, यथा कृतकत्वादित्यादिकः पचम्यन्तः शब्दोपि हेतुः । अर्थरूपं कृतकत्वमनित्यत्वगमकत्वान्मुख्यतया हेतुरुच्यते उपचारतस्तु तद्वाचकः कृतकत्वशब्दो हेतुरभिधियते एवमिहापि शब्दवाच्यार्थ-परिग्रहादुपचारेण नयोऽपि शब्दो व्यपदिश्यते इति भाव । यथा ऋजुसूत्रनयस्याभीष्ट प्रत्युत्पन्न वर्त्तमान तथैव इच्छत्यसौ शब्दनय । यद्यस्मात्पृथुबुध्नोदरकलितमृन्मय जलाहरणादि-क्रियाक्षम प्रसिद्धघटरूप भावघटमेवेच्छत्यसौ न तु शेषान् नामस्थापनाद्रव्यरूपान् त्रीन् घटानिति । शब्दार्थप्रधानो ह्येष-नयः चेष्टालक्षणश्च घटशब्दार्थो " घट चेष्टायां " घटते इति

घट' अतो जलाहरणादिचेष्टां कुर्वन् घटः । अतश्चतुरोऽपि नामादिघटानिच्छत ऋजुसूत्राद्विशेषिततर वस्तु इच्छति असौ । शब्दार्थोपपत्तेर्भावघटस्यैवानेनाभ्युपगमादिति अथवा ऋजुसूत्रात् शब्दनय विशेषिततर. ऋजुसूत्रे सामान्येन घटोऽभिमेत, शब्देन तु सद्भावादिभिरनेकधर्मैरभिप्रेत इति ते च सप्तभङ्गाः पूर्व उक्ता इति ॥

अर्थ—अब शब्दनयका स्वरूप कहते है शपति–बुलाना पुकारना उसको शब्द कहते हैं या शप्यते–वस्तुकानाम लेकर पुकारा जाय उसको शब्द कहते हैं शब्द वाच्यार्थ माही है ऐसा प्रधान पना जिस नय में हो उसको शब्दनय कहते हैं कृतक–किया उसका हेतु धर्म जिस वस्तु मे हो उसको भाषा द्वारा सहना अर्थात् शब्दका कारण वस्तुका धर्म हुवा जैसे–जलाहरण धर्म जिस में हो उसको घट कहते हैं यहा भी शब्दसे वाच्य अर्थ ग्रहण हुवा इसीलिये इसका नाम भी शब्दनय कहा है जैसे–ऋजुसूत्र नय को वर्तमान कालिक धर्म इष्ट है वैसे शब्दादि नय को भी वर्तमान धर्म ही इष्ट हैं । यथा—

जिसका पेट नीचेका भागगोल और बडा हो, उपर सकोचित हो उदर कलितयुक्त जलाहरणक्रिया के सामर्थ प्रसिद्ध घटरूप जो भावघट उसीको घट इच्छे–समझे परन्तु शेष नाम, स्थापना, द्रव्यरूप तीन घट को शब्दनय घट नहीं मानता अर्थात् घटशब्द के अर्थ का संकेत जिसमें हो उसी को घट कहे , घट धातु चेष्टा

याची है अत कारणात् यह शब्दनय घटरूप चेष्टा करते हुवे को ही घट मानता है और ऋजुसूत्र नय चारनिक्षेपयुक्त का घट मानता है शब्दनय भावघट को घटमानता है इतनी विशेषता है की शब्द के अर्थ की जहा व्युत्पत्ति हो उसी को वस्तुपने कहे अर्थात्, ऋजुसूत्रनय सामान्य घट की गवेषणा की और शब्दनय सद्भाव जो अस्तिधर्म तथा असद्भाव जो नास्तिधर्म इनसबसे सयुक्त वस्तु को वस्तुरूप मानता है।

तथा वस्तु के शब्द उच्चार को सात भागोंसे प्रतिपादन करना चाहिये इस लिये सप्तभगी के जितने भेद होते हैं उतने भेद शब्दनय के भी समझ लेना। सप्तभगी का स्वरूप पूर्व कह चुके हैं। वह शब्दनय वस्तु के पर्याय को अवलम्बन करके उसके भाव धर्म का ग्राहक है इसलिये शब्दनयमें वस्तु के भावधर्म—निक्षेप की मुख्यता है और पूर्व के चार नया में नामादि तीन निक्षेप की मुख्यता है। इति शब्दनय स्वरूप।

गाथा ॥ ज ज सण्ण, भासइ त त चिय समभिरोहइ जम्हा ॥ सण्णतरत्थविमुहो, तओ नओ समभिरूढोत्ति ॥ १ ॥ या या सज्ञा घटादिलक्षणा भाषते वदति ता तामेव यस्मात् सज्ञान्तरार्थविमुख समभिरूढोनय नानार्थनामा एव भाषते यदि एकपर्यायमपेक्ष्य सर्वपर्यायवाचकत्व तथा एकपर्यायाणा सङ्कर पर्यायसङ्करे च वस्तुसङ्करो भवत्येवेति मा भूत्सकरदोषः, अतः पर्यायान्तरानपेक्ष एव, समभिरूढनयः इति ॥

अर्थ—समभिरूढनय की व्याख्या करते हैं जो शब्दनय है वह इन्द्र, शक्र, पुरंदर इत्यादि सब इन्द्रके नाम भेद हैं परन्तु एक पर्याययुक्त इन्द्रको देखकर उसका सब नाम कहे । उक्तंच विशेषावश्यके "एकस्मिन्नपि इन्द्रादिके वस्तुनि यावत् इन्दन शक्रन–पुरदारणादयोऽर्थघटन्ते तद्देशेनन्द्र शक्रादिबहुपर्यायमपि तद्वस्तु शब्दनयो मन्यते समभिरूढस्तु नैव मन्यते इत्यनयोर्भेद"

वस्तु के एकपर्याय प्रगट होनेपर ( शेष पर्यायों के अभाव में भी ) शब्दनय उस वस्तु को सब नामोंसे बोलाने–संबोधे परन्तु समभिरूढनय को वह अमान्य है इस वास्ते शब्द और समभिरूढ नय में अन्तर–भेद है ।

कुंभादि मे जो संज्ञा या वाच्य अर्थ दिखे वही संज्ञा कहे जिस में संज्ञान्तर अर्थ का विमुखपना है उसको समभिरूढनय कहते हैं अगर एकसंज्ञा में सर्व नामान्तर मानते हैं तो सबको संकरता दोष होता है तब पर्याय का भेद नहीं रहता। पर्यायान्तर होता है वह भेदपने ही होता है इसवास्ते लिंगभेद भी सापेक्षतासे वस्तुभेदपना मानना चाहिये यह समभिरूढ नय स्वरूप कहा इस नय में भेदज्ञान की मुख्यता है ।

एवं जह सद्दत्थो सतो भूओ तदन्नहाभूओ ॥ तेणेव भूयनओ, सद्दत्थपरो विसेसेण ॥१॥ एवं यथा घटचेष्टायामित्यादि रूपेण शब्दार्थो व्यवस्थित तद्दत्ति, तथैव यो वर्त्तते घटादिकोऽर्थे स एव सन् भूतो विद्यमान "तदन्नाहभूओत्ति" वस्तु तदन्यथा शब्दार्थोल्लंघनेन वर्तते स तत्त्वतो घटाद्यर्थोऽपि न भवति

किंभूतो ? विद्यमान. येनैव मन्यते तेन कारणेन शब्दनय सम-भिरूढनयाभ्या सकाशादेवभूतनयो विशेषेण शब्दार्थनयतत्परः । अयं हि योषिन्मस्तकारूढ जलाहरणादिक्रियानिमित्त चेष्टमानमेव चेष्टमानमेव घट मन्यते न तु गृहकोणादिव्यवस्थित । विशेषत शब्दार्थतत्परोयमिति । वजणमत्थेणत्थं च वजणेणुभय विसे-सेइ ॥ जह घडसद चेट्ठावया तहा तपि तेणेव ॥ १ ॥ व्यज्यते अर्थोऽनेनेति व्यञ्जन वाचकशब्दो घटादिस्त चेष्टावता एत द्वान्येनोऽर्थेन विशिनष्टि स एव घट शब्दो यचेष्टावन्तमर्थं प्रति-पादयति, नान्यम् इत्येव शब्दमर्थेन नैयत्ये व्यवस्थापयतीत्यर्थः । तथार्थमप्युक्त-लक्षणमभिहितरूपेणव्यञ्जनेन विशेषयति चे-ष्टापि सैव या घटशब्देन वाच्यत्वेन प्रसिद्धा योषिन्मस्तकारूढस्य जलाहरणादिक्रियारूपा., न तु स्थानतरणक्रियात्मिका, इत्येवमर्थं शब्देन नैयत्ये स्थापयतीत्यर्थ' इत्येवमुभयम विशेष-यति शब्दार्थो नार्थः शब्देन नैयत्यें स्थापयतीत्यर्थ । एतदे-वाह-यदा योषिन्मस्तकारूढश्चेष्टावानर्थो घटशब्देनोच्यते स घटलक्षणोऽर्थ' स च तद्वाचको घटशब्द' अन्यदा तु वस्त्व-तरस्येव तच्चेष्टाभावाद्घटत्व, घट ध्वनेर्वाच्य वस्त्वमित्येवमुभय-विशेषक एवभूतनय इति ॥

अर्थ—एवभूतनय का स्वरूप लिखते हैं जैसे—घट चेष्टा-वाची इत्यादिरूपसे शब्दनयका अर्थ कहा है इसीतरहसे घटादि अर्थपने जो वर्ते अर्थात् विद्यमान रूपमे शब्दके अर्थका अवलम्बन करके प्रवर्ते या जिस २ शब्दका वाच्य अर्थ नहीं है [illegible]

वस्तु मे शब्दार्थपने की प्राप्ति नहीं है वह वस्तु वस्तुरूप नहीं है जिस शब्दार्थ में एक पर्याय भी न्यून हो उस वस्तु को एवभूतनय वस्तुपने नहीं मानता इसवास्ते शब्दनय तथा समभिरूढनयसे एवभूतनय विशेषान्तर है

एवभूतनय घट स्त्रीके मस्तक परहो पानी लानेकी क्रिया निमित मार्ग में आताहो पानी मे सयुक्त हो उसका घट मानता है परन्तु घरके कौनेमें रक्खा हुवा घट है उसको घटपने नहीं मानता क्यो कि वह घटपने की क्रिया का अकर्ता है जो स्त्री के मस्तक पर चढा हो चेष्टा सहित हो उसीको घट शब्द से बुलावे अन्यथा घट नहीं कहता जैसे—सामान्य केवली जो ज्ञानादि गुण पने समान है उसको समभिरूढनय अरिहन्त कहे परन्तु एवभूतनय जो समोवसरणादि अतिसय सम्पन्न सहित इन्द्रादि से पूजासत्कार सहित हो उसी को अरिहन्त कहे अन्यथा नहीं कहता, वाच्य वाचक की पूर्णता को मानता है इति एवभूत नय स्वरूप

यह सातों नय का स्वरूप विशेषावश्यक सूत्र के अनुसार कहा है इसमे नैगम के ७, सग्रह के ६ या १२, व्यवहार के ८ या १४, ऋजुसूत्र के ४ या ६ शब्द के ७, समभिरूढ के २, और एवभूतनय का, १ भेद इस तरह सब भेदो की व्याख्या की है अन्थान्तर मे सात सो भेद भी कहे है ।

## ॥ स्याद्वादरत्नाकरात् नयस्वरूप ॥

एवमेव स्याद्वादरत्नाकरात् पुनर्लक्षणात उच्यते नीयते येन श्रुतारयप्रामाण्यविषयीकृतस्यार्थस्य शस्तादितराशौदासीन्यत.

सम्मतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः । स्वाभिप्रेतादंशादपराशाप-लापी पुनर्नयाभासः स समासत. द्विभेदः द्रव्यार्थिक पर्याया र्थिक आद्यो नैगमसंग्रहव्यवहारऋजुसूत्र भेदाचतुर्द्धा केचित् ऋजुसूत्र पर्यायार्थिक वदन्ति ते चेतनाशत्वेन विकल्पस्य ऋ-जुसूत्रेग्रहणात् श्रीवीरसासने मुख्यतः परिणतिचक्रस्यैव भा-वधर्मत्वेनागाकारात् तेषा ऋजुसूत्रः द्रव्यनये एव धर्मयोर्धर्मिणो र्धर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जन आरोपसङ्कल्पाशादिभावेनानेकम-ग्रहणात्मको नैगमः सत्चैतन्यमात्मनीतिधर्मयोः गुणपर्यायवत् द्रव्यमिति धर्मधर्मिणोः क्षणमेको सुखी विषयाशक्तो जीव इति धर्मधर्मिणोः सूक्ष्मनिगोदीजीवसिद्धसमानसत्ताक. अयोगीनो मसरीति अशग्राही नैगमः धर्माधर्मादिनामेकान्तिकपार्थस्या-भिसन्धिनैगमाभास ।

अर्थ—अब स्याद्वादरत्नाकर ग्रन्थ से नय का स्वरूप लिखते ह श्रुतज्ञान के स्वरूप म प्राप्त किया जो पदार्थ के अश-विषयी ज्ञान और इस म इतर जो दुसरा अश उस दुसरे अश प्रति उदाशीनता वाले का जो अभिप्राय विशेष उसको नय कहते हैं अर्थात् वस्तु के एक अश को ग्रहण कर के अन्य से उदासी पने रहे उसको नय कहते हैं और एक अश को मुख्य कर व दूसरे अश को उत्थापे—निषेध करे उस को नयाभास (कुनय) कहते हैं।

नय के मुख्य दो भेद हैं (१) द्रव्यार्थिक (२) पर्या-यार्थिक द्रव्यार्थिक के चार भेद हैं (१) नैगम, (२) संग्रह, (३) व्यवहार, (४) ऋजुसूत्र कई आचार्य ऋजुसूत्र नय को पर्यायार्थिक भी कहते हैं इस लिये द्रव्यार्थिक के तीन भेद भी कह हैं,

नैगमनय का स्वरूप कहते हैं । जो धर्म को प्रधानपन या गौनपन अथवा धर्मी को प्रधानपने या गौनपने तथा धर्म धर्मी दोनाको प्रधानपने या गौनपन माने जो धर्म की प्रधानता है वह पर्याय की प्रधानता हुई और धर्मी की प्रधानता है वह द्रव्य की प्रधानता हुई, इसी तरह गौनता और धर्मधर्मी की प्रधानता, गौनता है वह द्रव्य, पर्याय का प्रधान, गौनपना है ऐसे प्रधान, गौनपने की गवेषणारूप ज्ञानोपयोग उस को नैगमनय कहते हैं, उस के बोध को नैगम बोध कहते हैं । जैसे

सत्, चैतन्य इन दो धर्मों में एक की मुख्यता और दुसरे की गौनता अंगीकार करे उस को नैगम कहते हैं यहा चेतन्य नामक जो व्यंजन पर्याय है उस को प्रधानपने गने क्यो कि चेतन्यता है वह विशेष गुण है और सत्त्व–अस्तित्व नामक व्यंजन पर्याय सब द्रव्यों में समानरूप से है इस लिये गौनपने समझे यह नैगमनय का पहला भेद है ।

तथा " वस्तु पर्यायवद् द्रव्य " यह वाक्य धर्मी नैगम नय का है । यहा " पर्यायवत् द्रव्य " ऐसी वस्तु है इसमें द्रव्य का मुख्यपना है और " वस्तु पर्यायवत् " वाक्य में वस्तु का गौनपना तथा पर्याय का मुख्यपना है यह उभयगोचरता है वास्ते यह नैगम नय का दूसरा भेद है ।

क्षणमेक सुखी विषयाशक्तो जीव इति धर्मधर्मीणोरिति " यहां विषयाशक्त जीव नामक धर्मी की मुख्यता विशेष रूप से है

और सुख लक्षण धर्म की प्रधानता विशेषण रूप से है यह विशेष विशेषण भाव से धर्मधर्मी को अवलम्बन कर के नेगम नय का तीसरा भेद कहा

धर्मधर्मी दोनो को आलम्बन, ग्रहण करने से सम्पूर्ण वस्तु ग्रहण होती है और तभी वह ज्ञान प्रमाण हो सक्ता है अर्थात् द्रव्य, पर्याय दोना का अनुभव करता हुआ जो ज्ञान है वह प्रमाण होता है यहा दोनो पक्ष के विषय एक की गौनता और दुसरे की मुख्यता का ज्ञान होता है इसलिये उसको नय कहते है । तथा सूक्ष्मनिगोद के जीव समान सत्तावान है और अयोगी केवली को ससारी कहना यह अश नैगम नय है ।

नैगमाभास—वस्तु में अनेक धर्म है उस को एकान्त-पने माने परन्तु एक दूसरे को सापेक्ष न माने अर्थात् एक धर्म को माने और दूसरे को न मने उसको नेगमाभास कहते हैं यह दुर्नय है क्यों कि अन्य नय की गवेषणा नहीं करता. जैसे— आत्मा में सत्त्व, चेतन्यत्व दोनों भिन्न भिन्न है जिस में एक मान्य और दूसरा अमान्य करे उसको नैगमाभास कहते हैं यह नैगम-नय का स्वरूप कहा

यथाऽऽत्मनि सत्त्व चैतन्ये परस्पर भिन्ने सामान्यमात्रग्राही सत्तापरामर्शरूपसङ्ग्रह. स परापरभेदात् द्विविधः तत्र शुद्धद्रव्य सन् मात्रग्राहकः परसग्रह. चेतनालक्षणो जीव' इत्यपरसङ्ग्रहः सत्ताद्वैत स्वीकुर्वाण सकलविशेषान् निराचराणः सङ्ग्रहा-भासः सङ्ग्रहस्यैकत्वन ' एगेआया " इत्यभिज्ञानात् सत्ताद्वैत-

एव आत्मा तत सर्वविशेषाणा तदितराणा जीवाजीवादि-द्रव्याणामादर्शनात् द्रव्यत्वादिनावान्तरसामान्यानि मन्वान-स्तन्भेदेपु गजनिमीलिकामवलम्बमान परापरसग्रह धर्माधर्मा-काशपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्य द्रव्यत्वादिभेदादित्यान्द्रिव्यत्वा-दिक प्रतिजानानस्तन्विशेषान् निन्हुवानस्तदाभास यथा द्रव्यमेव तत्त्व तत्पर्यायाणाम् ग्रहणाद्विपर्यास' इति सग्रह ।

अर्थ—समहनय का स्वरूप कहते हैं मामान्य मात्र, समस्तविशेप रहित सत्द्रव्यादि को ग्रहण करन का स्वभाव है और पिंडपने विशेष रासि को ग्रहण करता है परन्तु व्यक्तरूप से ग्रहण नहीं करता स्वजाति का देखा हुवा इष्ट अर्थ उसको अवि-रोधपने विशेष धर्म को एक रूप से ग्रहण करता है उसको सग्रहनय कहते हैं इस के दो भेद है ( १ ) परसग्रह ( २ ) अपरसग्रह ' अशेषविशेषोदासीन भजमान शुद्धद्रव्य सन्मात्र-मभिमन्यमान परसग्रह इति '' जो समस्त विशेष धर्म स्थापना की भजना करता हुवा अर्थात् विशेषपने को अग्रहण करता हुवा शुद्ध द्रव्य की सत्ता मात्र को माने जैसे—द्रव्य यह परसग्रह है विश्व एक सत पना है ऐसा कहने से अस्तिपने के एकत्व का ज्ञान होता है अर्थात् सब पदार्थ का एकत्वरूप से ग्रहण हो उसको सग्रहनय कहते है ।

। जो सत्ता ार करते है द्रव्यान्तर भेद
नहीं मानते वस्तु को
मानने वाले है

क्यों कि वस्तु प्रत्यक्ष भेद होने पर भी द्रव्यान्तरपने को नहीं मानते है इस लिये उनको सग्रहाभास कहते है। जैन दर्शन विशेष सहित सामान्य ग्राही है।

" द्रव्यत्वादिनयान्तरसामान्यानि मत्त्वा तद्भेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमान अपरसग्रह " जो जीवाजीवादि द्रव्य को अवान्तर सामान्यरूप से मानता हैं परन्तु जीवविषय प्रत्येक जीव की विशेषतारूप जो भव्य, अभव्य सम्यक्त्वी, मिथ्यात्वी, नर, नारकादि पर्याय आदि भेद है उस को ' गजनिमीलिका " मदोनमत्तता से नहीं गवेषता उस को अपरसग्रह कहते हैं और द्रव्य को सामान्यरूप से मानता है परन्तु द्रव्य का जो परिणामिकतादि धर्म है उसको नहीं मानता वह अपरसग्रहाभास कहलाता है यह सग्रहनय का स्वरूप कहा

सग्रहे च गोचरीकृतानामर्थाना विधिपूर्वकमवहरण येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहार, यथा यत् सत् तत् द्रव्य पर्यायश्चेत्यादि य पुनरपरमार्थिक द्रव्यपर्यायप्रविभागमभिप्रैति स व्यवहाराभासः चार्वाकदर्शनमिति व्यवहारदुर्नयः।

अर्थ—व्यवहारनय कहते हैं सग्रहनय से ग्राह्य जो वस्तु का सत्यादि धर्म उस को गुणभेद से विवेचन करता हुवा भिन्न २ कहे और पदार्थ की गुणप्रवृत्ति को मुख्यपने माने उस को व्यवहारनय कहते हैं जैसे—जीव, पुद्गलादि द्रव्य के पर्याय का क्रमभावी और सहभावी दो भेद हैं जिस में जीव दो प्रकार के हैं सिद्ध और ससारी इसी तरह पुद्गल के दो भेद हैं—परमाणु

और स्कंध इत्यादि कार्य भेद से भिन्नपना माने तथा क्रमभावी पर्याय के दो भेद (१) क्रियारूप (२) अक्रियारूप इस तरह सामर्थादि गुणभेदरूप विभाग करना इस को व्यवहारनय कहते हैं और जो परमार्थ बिना द्रव्य पर्याय का विभाग करते हैं वह व्यवहाराभासनय समझना यथा–दृष्टान्त

कल्पना कर के भेद विवेचन करनेवाले चार्वाक दर्शनादि वे व्यवहारनय का दुर्नय है जैसे–जीव सप्रमाणरूप से सिद्ध है परन्तु लोक प्रत्यक्ष दृष्टीगोचर नहीं होता इस लिये जीव नहीं एसा कहते हैं और जगत् में पचभूतादि वस्तु नहीं है ऐसी कल्पना करके बालजीवों को कुमार्ग में प्रवर्ताते हैं इस को व्यवहारदुनय कहते हैं यह व्यवहारनय का स्वरूप कहा ।

ऋजु वर्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रप्रधान्यतः सूत्रयति अभिमायः ऋजुसूत्रः । ज्ञानोपयुक्त ज्ञानी दर्शनोपयुक्त दर्शनी, कषायोपयुक्त कषायी, समतोपयुक्तः सामायिकी, वर्तमाना पलापी तदाभास. यथा तथागतमत इति ॥

अर्थ—ऋजुसूत्र नय कहते हैं । ऋजु–सरलपने अतीत अनागत की गवेषणा नहीं करता हुवा केवल वर्तमान समय वर्ती पदार्थ के पर्याय मात्र को प्रधानरूप से माने उस को ऋजुसूत्रनय कहते हैं जैसे–ज्ञानोपयोग सहित वर्ते वह ज्ञानी, दर्शनोपयोग सहित को दर्शनी, कषायपने वर्ते वह कषायि, समता उपयोग सहित वर्तने वाले को सामायिक यह ऋजुसूत्र नयका वाक्य है ।

प्रश्न—इस शब्दार्थ से तो ऋजुसूत्रनय और शब्दनय एकही प्रतीत होता है

उत्तर— विशेषावश्यक में कहा हैं " कारण यावत् ऋजु-सूत्र " ज्ञान कारणरूप प्रवर्तता हुवा ऋजुसूत्रनय माही है- और वही ज्ञायकता—जाननारूप कार में प्रवर्तमान होनेसे उसको शब्द-नय कहते हैं

वर्तमानकाल अपलापी को ऋजुसूत्राभास कहते है जैसे अस्ति भाव को नास्तिभाव कहे अथवा विपरीत भाव से कहे यथा जीव को अजीव कहे, अजीव को जीव कहे इत्यादि यह मत—बौद्धदर्शन का मन्तव्य है ये जीव द्रव्य सदा सर्वदा अस्तिरूप है जिसको पर्याय के पलटने से द्रव्य का सर्वथा विनाश मानते हैं यह ऋजुसूत्रनयाभास हैं इति ऋजुसूत्रनय• ।

एकपर्यायमागभावन तिरोभाविपर्यायग्राहकः शब्दनय, कालादिभेदन ध्वनेरर्थभेद प्रतिपाद्यमान शब्दः, जलाहरणादिक्रियासामर्थ एव घटः न मृत्पिन्डादौ तत्त्वार्थवृत्तौ शब्दवशा दर्थप्रतिपत्ति तत्कार्येषमें वर्तमानवस्तु तथामन्वान शब्दनयः शब्दानुरूप अर्थपरिणत द्रव्यमिन्छति त्रिकालत्रिलिंग त्रिव चनप्रत्ययप्रकृतिभि समन्वितमर्थमिच्छति तद्भेदे तस्य तमेव समर्थमाणस्तदाभास• ।

अर्थ—शब्दनय कहते है ॥ वस्तु की एक पर्याय प्रगट दिखने से और दूसरे शब्दवाचक पर्याय के तिरोभाव—अप्रगट होनें पर भी उस पर्याय को ग्रहण करता है अथवा तीन काल

तीन लिंग, तीन वचन के भेद से शब्द का भेदपना करके उस भेदपने अर्थ कहे या जलाहरणादि सामर्थ को घट कहे तथा–कुम्भ के चिन्ह–पर्याय सम्पूर्ण प्रगट नहीं होन पर भी उसको नाम सहित बुलावे अर्थात् कार्य के सामर्थपने को ग्रहण कर के वस्तु माने परन्तु मिट्टी के पिंडको घट नहीं मानता उस कों शब्दनय कहते हैं और नैगम संग्रह नय सत्ता योग्यता अशग्राही है तत्वार्थ टीका में कहा है–शब्द के अनुयायी अर्थ प्रतिपादन करना और वही अर्थ वस्तु में धर्मपने प्रगट हो उसको वस्तुमाने अर्थात् शब्दानुयायी अर्थ परिणति को वस्तु कहे लिंगादि भेद मे अर्थ का भेद है उस भेद सहित धर्म को वस्तु माने उस का शब्दनय कहते हैं और वस्तु का शब्दानुयायी अर्थ परिणति से विपरीत समर्थन करे उस को शब्दनयाभास कहते है यह शब्दनय का स्वरूप कहा ।

एकार्थावलंबिपर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढ । यथा इन्दनादिन्द्र', शकनाच्छक्र, पुरदारणात् पुरंदर इत्यादिषु । पर्यायध्वनिनामभिधेयनानात्वमेव कक्षीकुर्वाणस्तदाभास, यथा इन्द्र शक्रः, पुरंदर इत्यादि भिन्नाभिधेये ।

अर्थ —अब समभिरूढ नय का स्वरूप कहते है । एक पदार्थ को ग्रहण कर के उसके एकार्थावलम्बी जितने नाम होते हैं उतने पर्यायनाम होते है और उतने हीं निर्युक्ति, व्युत्पत्ति तथा अर्थ में भेद होते हैं उस अर्थ को सम्यक् प्रकार से आरोहन करे

अर्थात् पूर्वोक्त अर्थ सयुक्त हो उसको समभिरूढ नय कहते हैं जैसेइदिधातु परमैश्वर अर्थ है उस परमैश्वर्यवान को इन्द्र कहे तथा–शकन–नाौ २ शक्ति युक्त हो उसको शक्र कहते हैं पुर=दैत्य दर=विदारे उसको पुरदर कहते हैं शचि=इन्द्राणी उसका पति= स्वामी उसको शचिपति कहते हैं ये सब धर्म इन्द्र में हैं और देवलोक का स्वामी हैं इस लिये इन्द्र ऐसे नाम मे सबोधन करते हैं परन्तु दूसरे केवल नामादि इन्द्र है उनको उस नाम मे नहीं बुलाते किन्तु उनके जितने पर्याय नाम है उन का भिन्न २ अर्थ करे परन्तु एकार्थ न समझे उसको समभिरूढ नय कहते हैं इति समभिरूढनय ।

एव भिन्नशब्दवाच्यत्वाच्छब्दाना स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रिया विशिष्टमर्थ वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवभूत । यथा इन्दनमनुभव न्निद', शकनाच्छक्रः, शब्दवाच्यतया मत्यक्षस्तदाभास । तथा विशिष्टचेष्टाशून्य घटाख्यवस्तुनः घटशब्दवाच्य घटशब्दव्य- वृत्तिभूतार्थशून्यत्वात् पटवदित्यादि ।

अर्थ—एव भूतनय का स्वरूप कहते हैं । शब्दनय प्रवृत्ति निमित जो क्रिया उसके विशिष्ट अर्थ सयुक्त वाच्य धर्म से प्राप्त हो अर्थात् कारण कार्य धर्म सहित हो उसको एवभूत नय कहते हैं. ऐश्वर सहित हो वह इन्द्र, शक्ररूप सिंहासन पर बैठा हो तब शक्र, इन्द्राणी के साथ बैठा हो उस समय सचिपति अर्थात जित ने शब्द के पर्यायार्थ भाव को प्राप्त हो वैसे नाम से सबोधन करे और जो पर्यायार्थ न दिखे उसको उस नाम से नहीं कहे जहा तक एक

पर्याय भी न्यून हो उस को समभिरूढ नय कहते हैं और शब्द सम्पुर्ण पर्याययुक्त हो उसको एवभूतनय कहते हैं

जिस पदार्थ के नाम भेद की भिन्नता देखकर पदार्थ की भिन्नता कहे उसको एव भूतनयाभास कहते हैं नाम भेदसे तो वस्तु भिन्न ही होती है जैसे–हाथी, घोडा, हरिण भिन्न है इसतरह भिन्नपना माने या अर्थ भिन्नतारूप घटमें पट भिन्न है इसलिए इन्द्रसे पुरन्दर भिन्न माने वह एवभूतनय का दुर्नय है इति एवभूतनय । यह सात नय की व्याख्या कही ।

अत्र आद्य नयचतुष्टयमविशुद्ध पदार्थप्ररूपणाप्रवणत्वात्, अर्थनय नामद्रव्यत्त्वसामान्यरूपा नयाः। शब्दादयोविशुद्धनया शब्दानलवार्थमुग्यत्वादाद्यास्ते तत्त्वभेदद्वारेण वचनमिच्छन्ति शब्दनयास्तावत् समानलिंगाना समानवचनाना शब्दाना इन्द्रशक्रपुरदरादिना वाच्य भावार्थमेवाभिन्नमभ्युपैति न जातुचित् भिन्नवचन वा शब्द स्त्री दारा तथा आपो जलमिति समभिरूढ वस्तुप्रत्यर्थ शब्दनिवेशादिंद्रशक्रादीना पर्यायशब्दत्वे न प्रतिजानीते अत्यतभिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वादभिन्नअर्थत्वमेवानुमन्यते घट शक्रादिशब्दानामिवेति एवभूतः पुनर्यथा सद्भाववस्तुवचनगोचर आपृच्छतीति चेष्टाविशिष्टएवार्थो घटशब्दवाच्य चित्रालेख्यतोपयोगपरिणतश्चित्रकार । चेष्टारहितस्तिष्ठन् घटो न घट, तच्छब्दार्थरहितत्वात् कूटशब्दवाच्यार्थवत्नापि भुजानः शयानो वा चित्रकाराभिधानाभिधेयश्चित्रज्ञानोपयोगपरिणति शून्यत्वाद्गोपालवदेवमभेदभेदार्थवाचिनो नैकैकशब्दवाच्यार्थात

' लविनश्च शब्दप्रधानार्थोपसर्जनाच्छब्दनया इति तत्त्वार्थवृत्ता। एतेषु नैगमः सामान्यविशेषोभयग्राहक, व्यवहार' विशेषग्राहकः द्रव्यार्थास्लतिमृजुसूत्रविशेषग्राहक' एव एते चत्वारो द्रव्यनयाः शब्दादय. पर्यायार्थिकविशेषास्लत्रि भावनयाश्वेति शब्दादयो नामस्थापनाद्रव्यनिक्षेपापवस्तुतया जानन्ति परस्पर सापेक्षाः सम्यक्दर्शनिमतिनय भेदाना शत तेन सप्तशत नयानामिति अनुयोगद्वारोक्तत्वात् ज्ञेय।

अर्थ—इन सातों नयों में प्रथम की चार नय अविशुद्ध है इसलिये पदार्थ को सामान्यरूप से कहने का अधिकारी है इन नयों को कहीं अर्थनय भी कहा है अर्थशब्द को द्रव्यार्थीक समझना और शब्दादि तीन नय है वे शुद्धनय है शब्दके अर्थ की इस में मुख्यता है प्रथम की नय भेदरूपसे वचन-शब्द की वाच्यार्थ है, और शब्दादिनय लिंगादि अभेदसे वचन अभेदक है तथा भिन्न भिन्न वचन को भिन्नार्थग्राही है और समभिरूढनय भिन्न शब्द है उस वस्तु के पर्याय को नहीं मानता तथा एवंभूतनय भिन्न गोचर पर्याय को भिन्न मानता है। घटपने की चेष्टा सयुक्त हो उसको घट माने परन्तु एक कोने में रक्खे हुवे घट को घट नहीं मानता तथा चित्राम करता हो उसी उपयोग में वर्तता हो उसी को चित्रकार कहे परन्तु वही चित्रकार सोया हो, खाता हो, बैठा हो उस समय उसको चित्रकार नहीं कहता। क्योंकि उस समय उपयोग रहित है यह शब्द तथा अर्थ का भेदपना माननेवाला है अर्थ की शुन्यतावाले शब्दको प्रमाण नहीं करता है

शब्दप्रधान अर्थ जिसद्रव्य में गौनपने वर्ते वह शब्दादि तीन नय है ऐसा तत्त्वार्थ की टीका में कहा है।

इन सातनयों में प्रथम की नैगमनय सामान्य विशेष दोनों को माननेवाली है समग्रहनय सामान्य को मानती है व्यवहारनय विशेष को मानती है और द्रव्यालम्बी है। तथा ऋजुसूत्रनय विशेषग्राही है ये चारों द्रव्यनय कहलाती है और पिछली तीनों नय (शब्दादि) पर्यायार्थिक विशेषावलम्बी भावनय है तथा शब्दादिनय नाम, स्थापना, द्रव्य इन प्रथम के तीन निक्षेपों को अवस्तु मानती है "तिण्ह सद्दनयाण अवत्थु" यह अनुयोग-द्वार सूत्र का वाक्य है।

इन सातनयों को परस्पर सापेक्षपने ग्रहण करता है वह सम्यक्त्वी है अन्यथा मिथ्यात्वी समझना पुन एकैक नय के सौ सौ भेद होते हैं इसतरह सातनयके सात सौ भेद होते हैं यह अधिकार अनुयोगद्वार सूत्र में कहा है।

पूर्वपूर्वनयः प्रचुरगोचरः। परास्तु परिमितविषय.। सन्मात्रगोचरात् सग्रहात् नैगमो भावाभावभूमित्वाद् भूरि-विषयः, वर्तमानविषयाद् ऋजुसूत्रा यवहारस्त्रिकालविषयत्वाद् बहुविषयकालादिभेदेन भिन्नार्थोपदर्शनाद् भिन्नऋजुसूत्रविप-रीतत्वा महार्थ प्रतिपर्यायमशब्दमथभेदमभीप्सतः समभि-रूढाच्छब्द. प्रभूतविषय प्रतिक्रियाभिन्नार्थं प्रतिजानानात् एवभूतात् समभिरूढ. महान् गोचर'। नयवाक्यमपि स्वविषये प्रवर्तमान विधिप्रतिषेधाभ्या सप्तभगीमनुव्रजति।

अगग्राही नैगमः, सत्ताग्राही संग्रह, गुणप्रवृत्तिलोक प्रवृत्तिग्राही व्यवहारः, कारणपरिणामग्राही ऋजुसूत्र, व्यक्त-कार्यग्राही शब्द, पर्यायान्तरभिन्नकार्यग्राही समभिरूढः, तत् परिणमनमुख्यकार्यग्राही एवंभूतः, इत्याद्यनेकरूपो नयप्रचारः। " जावंतिया वयणपहा " तावंतिया चेव हुंति नयवाया " " इति वचनात् उक्तो नयाधिकार ।

अर्थ--पूर्व ७ नयप्रचुर विस्तारवाला है अर्थात नैगमनय का विस्तार बहुत है इससे परा=उपरकीनय परिमित विषयि है अर्थात् न्यून विषयि है क्योंकि सत्तामात्र ग्राही संग्रहनय है याने अस्ति सत्ता ग्राही संग्रह नय है और नैगमनय सद्भाव अथवा सकल्परूप असद्भाव सयथा ग्राही है अथवा सामान्य विशेष दोनो धर्मग्राही है इस वास्ते नैगम नय को प्रचुर विषयी कहा है, संग्रहनय सत्तागत सामान्य विशेष उभयग्राही है, व्यवहारनय सत् एक विशेषग्राही है इस लिये संग्रहनयसे व्यवहारनय का विषय कम है और व्यवहारनयसे संग्रहनय का विषय अधिक है ऋजु-सूत्रनय वर्तमान विशेष धर्मग्राही है व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनय कालविषय ग्राहक है इस लिये व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनय अल्प विषयी है शब्दनय काल, वचन, लिंग से विवेचन करता हुवा अर्थग्राही है और ऋजुसुत्रनय वचन लिंग से भेदपने नहीं करता इसवास्ते ऋजुसूत्रनय से शब्दनय अल्पविषयि है ऋजुसूत्रनय इससे अधिकविषयि है शब्दनय सब पर्यायो में से एक पर्याय ग्राही

है, समभिरूढनय व्यक्त धर्मके वाचक पर्याय को ग्रहण करता है इसवास्ते शब्दनयसे समभिरुढ अल्प विषयि है समभिरूढनय पर्याय के सब कालकी गवेषणा करता है और एवभूतनय प्रति समय क्रिया भेदसे भिन्न पदार्थपना मानता है इसलिये समभिरूढ-नयसे एव भूतनय अल्पविषयि है और इससे समभिरूढनय अधिक विषयि है

नय वचन है वह स्वस्वरूपसे अस्ति है परनय के स्वरूप की नास्ति है। इस तरह सर्वनय की विधि प्रतिषेध करनेसे सप्तभगी उत्पन्न होती है परन्तु नयकी सप्त-भगी विकला देशी होती है अर्थात् सप्तभगीमें से पीछेके चार भागे जो विकलादेशी कहे हैं व होते है सकलादेशी नहीं होते और जो सकलादेशी सप्तभगी है वह प्रमाण है इसलिये नयकी सप्तभगी नहीं होती

उक्तच रत्नाकरावतारिकाया " विकलादेश स्वभावादि नय सप्तभगी वस्त्वशमात्रप्ररुपकत्वात् सकलादेश स्वभावा तु प्रमाण सप्तभगी सम्पूर्णवस्तु स्वरूपप्ररूपकत्वात् " यह यथा योग्यपने नयाधिकार कहा ॥

## जीवमें सातनय घटाते हैं

(१) नेगमनयवाला कहता है गुणपर्याय और शरीर सहित है वे जीव इस नयवालेने शरीरके साथ दुसरे पुद्गल व धर्मास्ति कायादि द्रव्योका जीवमें ग्रहण किया

(२) संग्रहनयवाला कहता है असंख्यात प्रदेशी है वह जीव अर्थात् इस नयवालेने एक आकाश द्रव्यको छोडके शेष सब द्रव्य जीवमें ग्रहण किये

(३) व्यवहारनयवाला कहता है जो कामादि विषय या पुन्यकी क्रिया करे वह जीव इस नयवालेने धर्मास्तिकायादि तथा सर्व पुद्गलों को छोड़ा । परन्तु पाच इन्द्री, मन, लेश्या, वे पुद्गल जीवमें ग्रहण किये क्योंकि विषयग्राही इन्द्री है वह जीव से पृथक् नहीं है

(४) ऋजुसूत्रनयवाला कहता है उपयोगवान है वह जीव इसने इन्द्री आदि पुद्गलो को ग्रहण नहीं किया परन्तु ज्ञान अज्ञान का भेदभाव नहीं माना किन्तु उपयोग सहित को जीव माना है

(५) शब्दनयवाला कहता है भावजीव है वहीं जीव है किन्तु नाम, स्थापना, द्रव्य निक्षेप को वस्तु रूप नहीं मानता ऋजुसूत्रनय चारोनिक्षेप सयुक्त को वस्तु मानता है शब्दनय केवल भाव निक्षेपग्राही है

(६) समभिरूढनयवाला कहता है ज्ञानादि गुण सयुक्त है वह जीव है इस नयनेवालेने मति श्रुतिज्ञान जो साधक अवस्था-का गुण है वे सब जीवमें सामिल किये

(७) एवंभूतनयवाला कहता है अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र शुद्ध सत्तावाला है वह जीव इस नयवालेने सिद्धावस्था के गुणो को ग्रहण किया ।

इति नयाधिकार

## ॥ प्रमाणमाह ॥

सकल नयमग्राहकम् प्रमाण प्रमाता आत्मा प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्धः चैतन्यस्वरूपपरिणामी कर्ता साक्षाद् भोक्ता स्व-देहपरिणाम प्रतिक्षेत्रभिन्नतेनैव पञ्चकारणसामग्रीत सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र साधनात् साधयतेसिद्धि । स्वपर व्यवसायिज्ञान प्रमाण तद् द्विविध प्रत्यक्ष परोक्ष भेदात्स्पष्ट प्रत्यक्ष परोक्षमन्यत अथवा आत्मोपयोगत इन्द्रिय द्वारा प्रवर्तते न यज्ज्ञान तत्प्रत्यक्ष, अवधि मन पर्यायौ देशप्रत्यक्षौ, केवलज्ञान तु सकलप्रत्यक्ष, मतिश्रुतेपरोक्षे, तन्नतुर्विध अनुमानोपमानागमार्थापत्तिभेदात्, लिङ्गपरामर्शोऽनुमान लिङ्ग चाविनाभूत-वस्तुक नियत ज्ञेय यथा गिरिगुहिरान्तो न्योमावलम्बिधूमलेखा द्रष्ट्वा अनुमान करोति, पर्वतो वह्निमान् धूमवत्त्वात्, यत्र धूमस्तत्राग्निः यथा महानस, एव पञ्चावयवशुद्ध अनुमान यथा र्थज्ञानकारण, सदृश्यावलम्बनेनाज्ञातवस्तुना यज ज्ञान उपमान ज्ञान, यथा गौस्तथा गवयः गौसादृश्येन अदृष्टगवयाकारज्ञान उपमानमान, यथार्थोपदेष्टा पुरुष आप्त' स उत्कृष्टतो वीतरागः सर्वज्ञएव । आप्तोक्त वाक्य आगम , राग द्वेषाज्ञानभयादि दोष रहितत्त्वात् अर्हत, वाक्य आगम , तन्नुयायिपूर्वापराविरुद्ध मिथ्यात्वामयमरूपा यत्राचिरहित स्याद्वादोपेत वाक्य अन्येपा गिशनामपि वाक्य आगमः । लिङ्गग्रहणाद् ज्ञेयज्ञानोपकारक

अर्थापत्तिप्रमाण, यथा पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते तदा अर्थाद्रात्रो भुङ्क्ते एव इत्यादि प्रमाण परिपाटी गृहीत जीवा जीवस्वरूप. सम्यक्ज्ञानी उच्यते।

अर्थ—प्रमाण का स्वरूप कहते हैं सब नयों के स्वरूप को ग्रहण करनेवाला तथा सब धर्म का जानपना हो जिस में एसा जो ज्ञान वह प्रमाण हैं माप विशेष को प्रमाण कहते हैं अर्थात् तीन जगत के सब प्रमेय को मापने का जो प्रमाण वह ज्ञान है और उस प्रमाण का कर्ता आत्मा प्रमाता है वह प्रत्यक्षादि प्रमाण से सिद्ध है चैतन्य स्वरूप परिणामी है पुन भवन धर्म से उत्पाद व्यय रूप को परिणमता होता है इस लिये परिणामिक है, कर्ता है, भोक्ता है जो कर्ता होता है वही भोक्ता होता है बिना भोक्ता के सुखमयी नहीं कहलाता यह चैतन्य ससारपने स्वदेह परिणामी है प्रत्येक शरीर भिन्नत्वे भिन्न जीव है वे पाच प्रकार की सामग्री पाकर सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र के साधन से सम्पूर्ण अविनाशी, निर्मल, नि कलक, असहाय, अप्रयास, स्वगुणनिरावरण, अचय, अव्याबाध सुखमयी ऐसी सिद्धता निष्पन्नता उपार्जन करें यही साधन मार्ग है।

स्व, पर का व्यवसायी अर्थात् स्व आत्मा से भिन्न पर जो अनन्त जीव तथा धर्मादि का व्यवसायी—व्यवच्छेदक ज्ञान उस को प्रमाण कहते हैं जिस के मुख्य दो भेद हैं (१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं इस से इतर अर्थात् अस्पष्ट ज्ञान को परोक्ष कहते हैं अथवा आत्मा के उपयोग से

इन्द्रियों की प्रवृत्ति बिना जो ज्ञान है उस को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं जिसके दो भेद हैं (१) देश प्रत्यक्ष (२) सर्व प्रत्यक्ष अवधि तथा मन पर्यव ज्ञान देश प्रत्यक्ष है क्यों कि अवधिज्ञान एक पुद्गल परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव के कितनेक पर्यायों को देखता है और मन पर्यव ज्ञान मन के पर्यायों को प्रत्यक्ष देखता है परन्तु दूसरे द्रव्यों को नहीं देखता इसी लिये दोनो ज्ञान को देश प्रत्यक्ष कहा है वे वस्तु के देश को जानते है किन्तु सम्पूर्ण रूप से नहीं जानते और केवलज्ञान है वह जीवाजीव, रूपी, अरूपी, सर्व लोकालोक, तीनों काल के भावों को प्रत्यक्ष रूप से जानता है इस लिये सर्व प्रत्यक्ष कहा है।

मति श्रुति ये दोनों ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान है इस लिये ये परोक्ष है परोक्ष प्रमाण के चार भेद हैं (१) अनुमान प्रमाण (२) उपमान प्रमाण (३) आगम प्रमाण (४) अर्थापत्ति प्रमाण। चिन्ह से जिस पदार्थ की पहिचान हो उस को लिंग कहते हैं उस के अवबोध से जो ज्ञान हो उस को अनुमान प्रमाण कहते हैं जैसे पर्वत के सिखर पर आकाशावलम्बी धूवे की रेखा देखने से अनुमान होता है कि यहा अग्नि है क्यों कि जहा धूवा होता है वहा अग्नि अवश्य होती है आकाश को पहुचती हुई जो धूम्र रेखा है वह विना अग्नि के नहीं हो शक्ति इस को शुद्ध अनुमान प्रमाण कहते हैं यह प्रमाण मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है जो यथार्थ ज्ञान हो उस को मान " प्रमाण " कहते है और अयथार्थ ज्ञान है वह प्रमाण नहीं है।

सदृशावलम्बीपने बिनाजानी वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो जैसे—बैल=बलद सरीपी गाय यहा बैल से गाय की पहिचान हुइ इसको उपमा प्रमाण कहते हैं।

यथार्थ भावों का उपदेशक जो पुरुप उसको आप्त कहते है, उत्कृष्ट आप्त तो वीतराग रागद्वेप रहित सर्वज्ञ केवली हैं उनके कहे हुने वचनों को आगम कहते हैं जो रागद्रेप तथा अज्ञान के देप से आगे पीछे या न्यूनाधिक वचन कहा जाय उस को आगम नहीं कहते किन्तु अरिहतो के वचन आगम प्रमाण है उस के अनुयायी पूर्वापर अविरोध, मिथ्यात्व, असयम, कपाय से रहित भ्रान्ति विना स्याद्वाद सयुक्त साधक है वह साधक। बाधक है वह बाधक। हेय है वह हेय, उपादेय है वह उपादेय इत्यादि विवेचन सहित कहा हुआ है उस को आगम प्रमाण कहते हैं उक्त च " सुत गणहररइन, तदेव पत्तेयबुद्धरइय च ।। सुअकेवलीणा रइय अभिन्नदशपुव्विणा रइय ॥ १ ॥ इत्यादि सदुपयोगी भवभीरू जगतजीवों के उपकारी ऐसे श्रुत आमनाय को धारन करनेवाले जो श्रुत के अनुसार कहे उनका वचन भी प्रमाणरूप है।

किसी फलरूप लिंग को ग्रहण कर के अनजान पदार्थ का निरधार करना उस को अर्थापत्ति प्रमाण कहते है जैसे—देवदत्त का शरीर पुष्ट है वह दिन को नहीं खाता तब अर्थापत्ति से मालूम होता है वह रात को खाता होगा इससे शरीर पुष्ट है इसको अर्थापत्ति प्रमाण कहते है यह प्रमाण जाति से अनुमान प्रमाण का अश है इसलिये अनुयोगद्वारमें प्रथक नहीं कहा।

अन्य दर्शनीय प्रमाण मानते हैं वह असत्य है जैसे छे इन्द्रिय सन्निकर्ष से उत्पन्न हुवा जो ज्ञान उसको नयायिक प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं और परब्रह्म को इन्द्रिय रहित मानते हैं ज्ञानानन्दमयी मानते हैं तब इन्द्रिय रहित ज्ञान है वह अप्रमाण हुवा इत्यादि अनेक युक्ती है इसवास्ते वह अप्रमाण है और चारवाक मतवाले केवल एक इन्द्रिय प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते है इस तरह अन्य दर्शनीयों के अनेक विकल्प को हटाके सर्वनय, निक्षेप, सप्तभंगी, स्याद्वादयुक्त जीव अजीव वस्तु का सम्यग्ज्ञान जिसमें हो उस को सम्यग्ज्ञानी कहना यह ज्ञान का स्वरूप कहा ।

तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन । यथार्थहेयोपादेयपरिक्षायुक्त-ज्ञान सम्यग्ज्ञान । स्वरूपरमणपरपरित्यागरूप चरित्र । एत द्रत्नत्रयीरूपमोक्षमार्गसाधनात्साध्यसिद्धि इत्यनेनात्मन स्वीय स्वरूप सम्यग्ज्ञान ज्ञानप्रकर्षएवात्मलाभ ज्ञानदर्शनोपयोग लक्षण एवात्मा छद्मस्थाना च प्रथम दर्शनोपयोग केवलीना प्रथम ज्ञानोपयोग पश्चाद्दर्शनोपयाग सहकारीकृतन्यप्रयोगात् उपयोगसहकारेणैव शेषगुणाना प्रवृत्त्यभ्युपगमात इत्येव स्वत त्वज्ञानकरणे स्वरूपोपादान तथा स्वरूपरमणाभ्यानि कत्वेनैव सिद्धि ॥

अर्थ—श्री वीतराग के आगम से वस्तुस्वरूप को प्राप्त कर के उसके हेयोपादेय का निरधार करना उसको सम्यग्दर्शन कहते है तत्त्वार्थसूत्र में कहा है—" तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन " तथा उत्तराध्यनसूत्रमें " जीवाजीवाय बधो ॥ पुन्न पावासवोतहा ॥

सवरो निज्झरा मुक्खो ॥ सति एतीहिया नव ॥ १ ॥ तिहियाण तु भावाण सदभावे ऊवएसण ॥ भावेण मद्दहतस्म ॥ समभ विवियाहिय ॥ २ ॥ इत्यादि दशरूचीसे सब तत्त्वो को जानना, जीवादि पदार्थ की श्रद्धा-निरधार को सम्यगदर्शन करते हैं सम्यगुदर्शन धर्म का मूल है, तथा हेय छोड़ने योग्य है उपादेय ग्रहण करने योग्य है ऐसी परिक्षा महित ज्ञान को सम्यगज्ञान कहते हैं जिसमें हेयोपादेय सकोच अकरण बुद्धि नहीं है परन्तु उपादेय के उपयोग से ऐसी चिन्तवना हो कि अब कन करूगा ? इस के विना कैसे काम चलेगा ? ऐसी बुद्धि नहीं है उस को मवे दन ज्ञान कहते हैं, इस से मवर हो ऐसा निश्चय नहीं है।

स्वरूपरमण, परभाव रागद्वेप विभावादि के त्याग को चारित्र कहते हैं यह रत्नत्रयीरूप परिणाम मोक्षमार्ग है । इस के साधन करने से साध्य जो परम अव्याबाधपद की सिद्धि प्राप्त होती है आत्मा का स्व स्वरूप जो यथार्थ ज्ञान है तथा चेतना लक्षण वही जीवत्वपना है, ज्ञान का प्रकर्ष बहुलतापन वही आत्मा को मिलता है, ज्ञानदर्शन उपयोग लक्षण आत्मा है छद्मस्थ को पहले दर्शन उपयोग है और पीछे ज्ञानोपयोग है, तथा केवली को पहले ज्ञानोपयोग है और पीछे दर्शनोपयोग है जो जीव नवीन गुण प्राप्त करता है उस का केवली को ज्ञानोपयोग उसी समय होता है पीछे महकारीकतृत्व ( सहायक ) प्रयोग होनेसे दर्शन उपयोग होता है । उपयोग सहकारत्व-उपयोग की मददसे शेष गुणों की प्रवृत्ति का ज्ञान होता है अर्थात् विशेष धर्म है

यह सामान्य के आधारवर्ती है इसके सहित जाने यह विशेष के साथ सामान्य का ग्रहण हुवा और सामान्य को भी विशेष सहित जाने यह सर्वज्ञ सर्वदर्शीपना समझना इसतरह स्वतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करनेसे स्वधर्म की प्राप्ति होती है तथा स्वरूप की प्राप्तिसे स्वरूपमें रमणता होती है और उस रमणतासे ध्यान की एकत्वता होती है अर्थात् निश्चयज्ञान, निश्चयचारित्र, निश्चयतप पना प्राप्त होता है और इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तत्र प्रथमतः ग्रन्थिभेदं कृत्वा शुद्धश्रद्धानज्ञानी द्वादश कषायोपशम स्वरूपैकत्वध्यानपरिणतेन क्षपकश्रेणीपरिपाटीकृतघाति कर्मक्षय, अवाप्तकेवलज्ञानदर्शनः, योगनिरोधात् अयोगीभावमापन्नः, अघातिकर्मक्षयानन्तर समय एवाम्पर्शवद्, गत्वा एकान्तिकात्यन्तिकानां बाधनिरुपाधिनिधिरूप चरित्रानयोशाविनाशिसपूर्णात्मशक्तिमाग्भावलक्षण सुखमनुभवन् सिध्यति साद्यन त काल तिष्ठति परमात्मा इति एतत् कार्यं सर्वं भव्यानां॥

अर्थ—प्रथम ग्रंथिभेद करके शुद्धश्रधावान तथा शुद्ध ज्ञानी जीव पहले तीन चोकड़ी का क्षयोपशम करके प्राप्त किया है चारित्र उस ध्यानसे एकत्व होकर क्षपकश्रेणी के अनुक्रमसे घातिकार्मों का क्षय करके केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्तकर सयोगी केवली गुणस्थानक पर जघन्य अन्तरमुहूर्त उत्कृष्ट आठ वर्ष न्यून पूर्वकोड़ वर्ष पर्यंत रह कर कोई जीव समुद्घात करता है और कोई नहीं भी करता परन्तु आवर्जिकरण सब केवली करते हैं जिसका स्वरूप कहते हैं।

आत्मप्रदेशों में रहे हुवे कर्मदल उनको पहले चलयमान करते हैं पीछे उदीरणा करते हैं और फिर भोगवकर निर्जरते हे केवली का जब तेरवे गुणस्थनक में अल्पायु रहता है उस समय आवर्जिकरण करते हैं यथा–प्रतिसमय असख्यातगुनी निर्जरा करने योग्य कर्मदल को आत्मवीर्य से चलायमान करे ऐसा जो वीर्य का प्रवर्तन उसको आवर्जिकरण कहते हैं।

इसतरह आवर्जिकरणकरता हुवा यदि तीन कर्मो का दल अधिक रहे तो समुद्घात करते हैं अन्यथा समुद्घात नहीं करते किन्तु आवर्जिकरण सब केवली करते हैं। तेरवे गुणस्थानक के अन्त में योग निरोधकरके अयोगी, अशरीरी, अनाहारी, अप्रकप, घनीकृत आत्मप्रदेशी होकर पाच लघु अत्तर ( अइउऋलृ ) कालमात्र अयोगी नामक चवदमें गुणस्थानक पर ठहर कर शेप सत्तागत प्रकृती जो विद्यमान अविद्यमान है उस को स्तिवुक सक्रम से खपाके समस्त पुद्गल सग रहित होकर तत् समय आकाश प्रदेश की समश्रेणी अर्थात् दूसरे प्रदेश की श्रेणी को अस्पर्श करता हुवा लोकान्त–लोकके अन्तिम भागमें सिद्ध, कृतकृत, सम्पूर्णगुण, प्रागूभावी, पूर्णपरमात्मा, परमानदी, अनन्तकेवलमयी, अनन्तदर्श नमयी, अरूपी सिद्धावस्था को प्राप्त होते हैं। उक्त च उत्तराध्ययन सूत्रे " कहिं पडिहयासिद्धा। कहिं सिद्धा पयट्ठिया ॥ कहिं बोदि चइत्ताण ॥ कत्थगतूण सिज्झई ॥ अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ॥ इहबोदि चइत्ताण तत्थगतूण सिज्झई ॥ इत्यादि वे सिद्ध एकान्तिक, आत्यतिक, अनाबाध, निरूपाधि, निरूपचरित,

अनायास, अविनाशी, सम्पूर्ण आत्मशक्ति प्रगटरूप अनन्त सुखका अनुभवकर्ता है। और उनके प्रति प्रदेश में अव्याबाद सुख अनन्त हैं। उक्त च उववाईसूत्रे " सिद्धस्स सुहोरासि ॥ सव्वद्धा पिण्डिय जइ वज्जा ॥ सोणतवग्गोभइयो ॥ सव्वागासे न माइज्जा ॥ १ ॥ इति वचनात् परमानन्द सुखके भोक्ता हैं सादि अनन्तकाल पर्यंत परमात्मपने रहते हैं और यही कार्य सब भव्य प्राणीयों को करने योग्य हैं इसकी पुष्टी का कारण श्रुताभ्यास है इसकि लिये यह द्रव्यानुयोग नय स्वरूप को किंचित कहा है यह ज्ञान पना जिस गुरूकी परम्परा से मैंने प्राप्त किया है उन गुरूवों की परम्पराको स्मर्ण करता हू।

काव्य

गच्छे श्री कोटिकाख्ये विशदखरतर नामधारा महान्तः,
सूरि श्री जैनचन्द्रा गुरुतरगणभृत्शिष्यमुख्या विनाताः ॥
श्रीमत्पुण्यप्रधानाः सुमतिजलनिधि पाठका साधुरंगाः
तच्छिष्या, पाठकेन्द्रा' श्रुतरसरसिका राजसारा मुनीन्द्रा ॥१॥

तच्चरणाबुजसेवालीनाः श्रीज्ञानधर्मधरा ॥ तत्शिष्यपाठकोत्तमदीपचन्द्रा-श्रुतरसज्ञा ॥ २ ॥ नयचक्रलेशमेतत्तेषा शिष्येण देवचन्द्रेण स्वपरावबोधनार्थं कृत सदभ्यासवृद्धयर्थं ॥ ३ ॥ शोधयन्तु सुधिग कृपापरा, शुद्धतत्त्वरसिकाश्च पठतु ॥ साधनेन कृत सिद्धिसत्सुखा, परममंगलभावमश्नुते ॥ ४ ॥ इति श्री नयचक्र विवरण समाप्तम् ॥

## दोहा.

शुद्धबोध विणु भाविकने । न होवे तत्व प्रतीत ॥
तत्त्वालंबन ज्ञान विण । न टले भवभ्रम भीत ॥ १ ॥

तत्त्व ते आत्मस्वरूप छे । शुद्ध धर्म पण तेह ॥
परभावानुग चेतना । कर्म गेह छे एह ॥ २ ॥

तजि परिपरणति रमणता । भज निज भाव विशुद्ध ॥
आत्मभावथी एकता । परमानंद प्रसिद्ध ॥ ३ ॥

स्याद्वाद गुण परिणमन । रमता समता संग ॥
साधे शुद्धानंदता । निर्विकल्प रसरंग ॥ ४ ॥

मोक्षे साधन तणु मूल ते । सम्यग् दर्शन ज्ञान ॥
वस्तु धर्म अवबोध विणु । तुस खंडन सामान ॥ ५ ॥

आत्मबोध विणु जे क्रिया । ते तो बालकचाल ॥
तत्त्वार्थनी वृत्ति में । लेजो वचन संभाल ॥ ६ ॥

रत्नत्रयी विणु साधना । निष्फल कही सदीव ॥
लोकविजय अध्ययनमें । धारो उत्तम जीव ॥ ७ ॥

इन्द्रिय विषय आसंसना । करता जे मुनी लिंग ॥
खूता ते भवी पंकमें । भाखे आचारंग ॥ ८ ॥

इम जाणी नाणी न करे पुद्गल आस ॥
शुद्धात्म गुणमें रमें । ते पामें सिद्धि विलास ॥ ९ ॥

सत्वार्थ नय ज्ञान विनु । न होय सम्यग् ज्ञान ॥
सत्य ज्ञान विणु देशना । न कहे जिन भाण ॥ १० ॥

स्यादवाद वादी गुरु । तसु रस रसीया शिष्य ॥
योग मिले तो निपजे । पूरण सिद्ध जगीस ॥ ११ ॥

वक्ता श्रोता योगथी । श्रुत अनुभव रस पीन ।
ध्यान ध्येयनी एकता । करता शिव सुख लीन ॥ १२ ॥

इम जाणी शासनरुची । करजो श्रुत अभ्यास ॥
पामी चारित्र सपदा । लेहसो लील वीलास ॥ १३ ॥

दीपचन्द्र गुरुराजने । सुपसाये उल्लास ॥
देवचन्द्र भवि हितभणी । कीधो ग्रन्थ प्रकाश ॥ १४ ॥

सुणसे भणसे जे भविक । एह ग्रन्थ मनरग ।
ज्ञानक्रिया अभ्यासनां । लहेशे तत्वतरग ॥ १५ ॥

द्वादशसार नयचक्र छे । मल्लवादिकृत वृद्ध ॥
सप्तशतिनय वाचना कीधी तिहा प्रसिद्ध ॥ १६ ॥

अल्पमतिना चित्तमें । नावे व विस्तार ।
मुख्य स्थूल नय भेदनो । भाख्यो अल्प विचार ॥१७॥

खरतर मुनिपति गच्छपति श्रीजिनचन्द्र सूरीस ॥
तास शीस पाठक प्रवर । पुण्यप्रधान मुनीस ॥ १८ ॥

तसु विनयी पाठक प्रवर । सुमति सागर सुसहाय ।
साधुरग गुणसनिधि । राजसागर उवझाय ॥ १९ ॥

पाठक ज्ञान धर्मगुणी । पाठक श्री दीपचन्द्र ॥
तान सीस देवचन्द्रकृत । भणता परमानद ॥ २० ॥

## ॥ अनुवादकीय ग्रन्थ समाप्ति सवैया इकतीसा ॥

मे—घ ज्यु वर्षत ध्वनि, धारा अनुपम पुनि ।
घ—न ज्यू गर्जत घोर, हृदै हुलसायो है ॥
रा—ग द्वेष लेस नाहीं, मोह को प्रवेश नाहीं ।
ज—गत उद्धार सार, यही मन भायो है ॥
मु—नि बीच इन्द चन्द, सोहत आनद कद ।
नो—राच को निकन्दातम, भाव प्रगटायो है ॥
त—रन तारन धीर, वीर को नमन करी ।
गुरु के चरण रज, सीस पे चढायो है ॥ १ ॥

ताहि के प्रसाद नय-चक्र अनुवाद कीनो ।
देवचन्द्र सूरि कृत, बालबोध भायो है ।
तत्त्वबोध हेतु मुनि, सेतु सुन्दरज्ञान पायो ।
फळवृद्धि काज मेघ हिय हुलसायो है ॥

तत्त्व के रसिक जेहि, ताते अनुराध येहि ।
गुणग्राही होउ जाते, उच्चपद पायो है ॥
उत्तम वैसाख मास, अक्षय त्रितीय खास ।
समनोगणीस आठ, पाच (१९८५) को रचायो है ॥ २ ॥

श्रीमदुपाध्याय देवचन्द्रजी कृत नयचक्रसार का यह हिन्दी अनुवाद
शा० लाधूरामजी तत् पुत्र मेघराज मुणोत फलोधीवालेने
स्वपर हित के लिये बनाया है अल्पज्ञता के कारण
न्यूनाधिक लिखा हो उसके लिये क्षमा प्रदान
करेंगे सुज्ञेषु किम् बहुना ॥ श्रीरस्तु
कल्याणमस्तु ॥

इति श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत नयचक्रस्य
हिन्दी अनुवाद समाप्तम् ॥